१



# मोहन राकेश

# श्रेष्ठ कहानियाँ

कमलेश्वर द्वारा लिखित

मेरा हमदम : मेरा दोस्त



नये कहानीकार

सम्पादक – राजेन्द्र यादव



# मोहन राकेश

जन्म : ८ जनवरी, १९२५
शिक्षा : एम० ए० (हिन्दी-संस्कृत)
पहली कहानी : दोराहा, 'सरिता' (दिल्ली) १९४७

## रचनाएँ

**कहानी-संग्रह**

* इन्सान के खण्डहर * नये बादल
* जानवर और जानवर * एक और ज़िन्दगी

**उपन्यास**

* अँधेरे बंद कमरे

**नाटक**

* आषाढ़ का एक दिन * लहरों के राजहंस

**प्रकाश्य**

* नीली रोशनी की बांहें [उपन्यास]
* अन्धे और अधूरे [नाटक]
* दूध और दाँत [एकांकी-संग्रह]

'नये कहानीकार'

सम्पादक : राजेन्द्र यादव

# मोहन राकेश : श्रेष्ठ कहानियां

कमलेश्वर द्वारा

मेरा हमदम : मेरा दोस्त



राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

दूसरा संस्करण, १९६६

| | | |
|---|---|---|
| मूल्य | : | तीन रुपये |
| प्रकाशक | : | राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६ |
| मुद्रक | : | दि प्रिंट्समैन, नई दिल्ली-५ |

MOHAN RAKESH KI SHRESHTHA KAHANIYAN :
SHORT STORIES : EDITED BY RAJENDRA YADAV

# क्रम

# प्रमुख स्वर

सुनते हैं : 'पुरानी' कहानी के एक संत ने यूनानी शाहजहां के अन्दाज़ से चादरा कन्धे पर डालकर पूछा—"बताइए, मोहन राकेश की कहानियों को आप कैसे नई कहानी कहते हैं ?" मुझे नहीं मालूम श्रोता ने क्या उत्तर दिया, लेकिन यह बात सच है कि यशपाल और अश्क की संवेदना का पाठक, राकेश की कहानियों को अपने उतना ही निकट पाता है जितना 'नई कहानी' का पाठक। इसलिए राकेश दोनों कथा-पीढ़ियों में 'स्वीकृत' है। परम्परागत कहानी के शिल्प और शैली में उसने प्रयोग नहीं—परिमार्जन किए हैं। उसने नया शिल्प, नई भाषा या नया कथ्य कम खोजा है ; जो कुछ था उसे ही नया संवार (फ़िनिश), नये अर्थ और नई गहराइयां दी हैं—यह सन्तुलन ही उसकी सबसे बड़ी शक्ति है···उसने नख-शिख से दुरुस्त-चुस्त कहानियां

लिखी हैं···उसके पाठक को न उलझाव की शिकायत होती है, न भटकन की···

कभी-कभी किसी लेखक का सम्पूर्ण व्यक्तित्व कुछ इस तरह चारों ओर शाखें फैला लेता है कि उसकी उपलब्धि के किसी एक पक्ष का समुचित मूल्यांकन ही नहीं हो पाता···वहां या तो अतिशयोक्ति होती है या उपेक्षा···राकेश के नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' की सफलता उसकी कहानियों के मूल्यांकन में सबसे अधिक बाधक रही है। उनकी 'आलोचना'—'बहुत अच्छी कहानी है।' या 'कैसी कहानी लिखने लगे हैं राकेश !' से आगे नहीं बढ़ पाई···शायद ही किसीने चिन्ता की हो कि विश्लेषण करे—यह अच्छा और बुरा अपनी पसन्द-नापसन्द से ऊपर और अलग भी कोई चीज़ है या नहीं ?

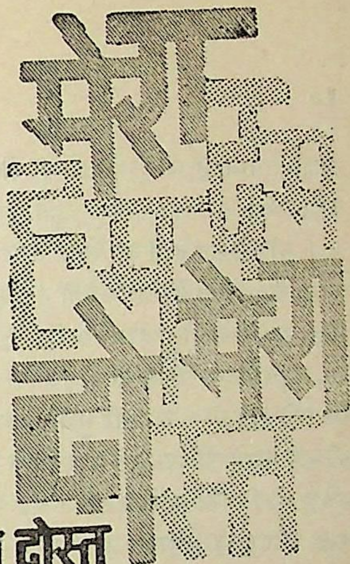
वस्तुतः उसकी कहानियों की दो विशेषताओं को लोग अपनी-अपनी भाषा में 'अच्छा' या 'बुरा' कहते रहे हैं।

एक है उसकी विषय-गत विविधता···विभिन्न स्थितियों और विविध मनोविज्ञानों में उतर सकने की अन्तर्दृष्टि···ऑब्जैक्टिविटी या निर्वैयक्तिकता···यथार्थ के तर्क-संगत, सार्थक संदर्भों की पकड़···'मन्दी' का बूढ़ा हो या 'मवाली' का बच्चा, 'आखिरी सामान' की आधुनिक नारी की ट्रेजेडी हो या 'उसकी रोटी' की ड्राइवर-पत्नी की मजबूरी, 'गुनाहे बेलज़्ज़त' का नपुंसक हो या 'परमात्मा का कुत्ता' का यमला (धाकड़) जाट···कहीं भी राकेश की कलम डगमगाती नहीं है···एक ओर उसने देश के विभाजन पर 'मलबे का मालिक' और 'क्लेम' जैसी सशक्त कहानियां दी हैं तो दूसरी ओर घुटन और उमस के बीच नये बादलों को रेखांकित करने की कोशिश की है···वह पात्र और परिस्थिति की सार्थक स्थिति को पकड़कर परफैक्ट—शास्त्रीय दृष्टि से निर्दोष—कहानी खड़ी कर देता है और इस सार्थक स्थिति के रेशे युगबोध के गतिशील परिप्रेक्ष्य में दूर तक देखे जा सकते हैं, वहां अपने 'पुरानेपन' के बावजूद वह सजग और समर्थ कथाकार है···

लेकिन ये राकेश की सफल कहानियां हैं। उसकी विशिष्ट या सिग्नि-

फिकैण्ट कहानियां दूसरी हैं···वहीं वस्तुतः उसका प्रमुख नायक है। घर-परिवार से टूटा और बदले में उन्हें तोड़ता व्यक्ति राकेश की इन कहानियों का केन्द्र है और उसकी अधिकांश विशिष्ट कहानियां, प्रायः उसे ही विभिन्न कोणों से सहानुभूति देती और गिलगिली दया उभारती हैं। कभी वह नायक पहाड़ी स्कूल में अध्यापन करती 'सुहागिनों' की समानान्तर ज़िन्दगियों के बीच रहता है तो कभी सजल मातृत्व की करुण और 'आर्द्रा' छाया के नीचे ; कभी वह अपने भोले-भाले बच्चे की निष्कपट आंखों से, कुहासों में डूबी 'एक और ज़िन्दगी' को देखता है, तो कभी 'मिस पाल' के बहाने छूटे हुए को छोड़ नहीं पाता और खाली डिब्बों की तरह उससे चिपका रहता है या शीशे के अमृतबानों ('ग्लास-टैंकों' ?) में लौट जाता है···मगर ये सब अलग-अलग कोण हैं, नायक वही है, वहीं है···उसी टूटी और छूटी हुई दुनिया के मलबे पर मालिक की तरह बैठा अपनी ही वीरानियों से घिरा···और 'अपरिचित'···और हर नया कोण सिर्फ नया जस्टीफिकेशन, नया ऐक्सप्लेनेशन—सफाई···अर्थात् कान्फैशन और कमिटमैंण्ट नहीं···

यहीं कथा-संत अपना चादरा या अठपहलू चश्मा साधकर पूछते हैं कि···




# मेरा हमदम : मेरा दोस्त

कई अदालतें हैं, जिनमें मेरा यह बहुत प्यारा दोस्त खड़ा हुआ है। कई जुर्म हैं, जिनका यह शख्स गुनहगार है, और जुर्म भी ऐसे-वैसे नहीं, काफी संगीन हैं···पहला जुर्म यह है कि राकेश कहीं टिकता नहीं और दूसरा है कि टिकता है, तो उठता नहीं !···कि वह यह चाहता है कि दुनिया में सभी लोग सिर्फ उसके लिए सोचें और परेशान हों···कि वह सिर्फ यह चाहता है कि सबकी परेशानियां वह ओढ़ ले, उसके बारे में कोई बात न की जाए !···कि वह लोगों को रगेदने के लिए पीछा करता है और उसकी हंसी में ज़हर बुझा हुआ है···कि वह अपने में मस्त है और ऐसे निश्छल

ठहाके लगाता है, जो दुश्मन को भी दोस्त बना देते हैं ! कि···वह लिखता बहुत अच्छा है···पर आदमी बहुत अच्छा नहीं है !

और ये सब बातें उस शख्स के बारे में हैं, जिसे बहुत आसानी से पहचाना जा सकता है। अगर कहीं एक ऐसा शख्स दिखाई पड़े, जो शिल्क की निहायत लम्बे कालरवाली कमीज़ पहने हो, जिसके कफ कोट की बांहों से छः अंगुल बाहर निकले हों और उनमें एकदम पुरानी चाल के कफ-बटन हों, जिसकी टाई की गांठ ढीली मुट्ठी की तरह गर्दन में बेतरतीबी से कसी हो, कीमती कपड़े की पैंट जिस पहननेवाले से पनाह मांग रही हो और जो गोल्ड फ्लेक की सिगरेटें जला-जलाकर खा रहा हो और माचिस की तीलियां, राख और टुकड़े निहायत साफ-सुथरी और सजी जगहों में फेंकता जा रहा हो और बात-बात पर आसमान-फाड़ ठहाके लगाता हो और लेखक के बजाय किसी बार का रईस, पर पहली नज़र में एकदम गावदी प्रोप्राइटर लगता हो, तो समझ लीजिए कि वह राकेश है। अगर वह राकेश न भी हुआ तो वह राकेशनुमा आदमी आपको उसका अता-पता बता देगा, "आप उन साहब को पूछ रहे हैं ! जी हां, कल ही तो उन्होंने यहां टेबल रिज़र्व कराई थी, चार-पांच दोस्तों के लिए···पैसे भी दे गए थे, पर आए नहीं !"

यह मुजरिम पैसे का दुश्मन है···और यह दुश्मन पैसा भी ऐसा लती है कि उसका पीछा नहीं छोड़ता। वह वक्त बहुत नाज़ुक था, लगभग यही दिन थे—एक साल पहले। राकेश के बारे में पचासों बातें सुनाई पड़ती थीं और सभी उससे नाराज़ दिखाई पड़ रहे थे। उनमें से कुछ बातें बड़ी सनसनीखेज़ थीं—राकेश दिल्ली छोड़कर भाग गया ! राकेश निहायत गैर-ज़िम्मेदार है···कुछ लोग उसे मार डालने के लिए दिल्ली में घूम रहे हैं !

और यह खबर सुनकर इतना इत्मीनान तो हुआ कि राकेश दिल्ली में है, क्योंकि मारनेवाले यहीं घूम रहे थे। वैसे यह भी कोई अचरज की बात न होती कि वह दिल्ली में ही होता और उसे मारनेवाले जालंधर में घूम रहे होते, क्योंकि उसके दुश्मन भी कम नहीं हैं—कुछ उसके व्यक्तिगत मामलों को लेकर, कुछ उसके उत्कृष्ट लेखन को लेकर और कुछ उसकी

मस्ती को लेकर···

पर वह दिन नहीं भूलता। एक साहब मेरे कमरे में घुसे और बेहद गन्दे तरीके से गालियां देते हुए बोले, "वह आपके राकेश साहब की कमबख्ती आई है···बड़ा लेखक बनता है···अब पता लगेगा कि ज़िन्दगी क्या है···" और इतना कहते-कहते उन्होंने जैसे मुझे ललकारा था और लेखकों की नैतिकता और सामाजिक बोध को चुनौती दी थी। उनकी आंखों में हिकारत थी और एक ऐसा आक्रोश, जो मुझे छेद रहा था। पर भीतर ही भीतर मैं स्थितियों को सुलझा रहा था, और रह-रहकर कीर्तिनगर का वह मकान मेरी आंखों के सामने घूम जाता था जहां राकेश ने एक बार फिर सुस्थिर तरीके से रहने और जमकर लिखने की योजना बनाई थी। उस घर में मैं कई बार उससे मिला और हर बार मुझे यही लगा कि घर में सुख की शान्ति नहीं, एक बेहद खौफनाक सन्नाटा रेंग रहा है···

दिल्ली से कटा हुआ कीर्तिनगर···इधर-उधर खाली पड़े हुए प्लाट जहां शाम सात बजे से खामोशी छा जाती थी। जब भी वहां बैठता, तो कुछ देर के लिए उसके ठहाकों से दीवारें हिलने लगतीं, पर एक क्षण बाद ही बड़ी गहरी खामोशी छा जाती। भीतर से बुलावा आता, "राकेश जी···"

और जब वह लौटता, तो उसकी बड़ी-बड़ी आंखों में एक अजीब-सा बेगानापन दिखाई पड़ता और फिर वह अपनी परेशानी को दबाता हुआ कहता, "चलो डियर, कनाट प्लेस चलते हैं !" और घर से बाहर आते ही वह अपने फार्म में आ जाता। वही चुभती हुई बातें, यारों के किस्से और ठहाके ! वह हंसता, तो तारों पर बैठी हुई चिड़ियां पंख फड़फड़ाकर उड़ जातीं और राह चलते ऐसे चौंककर देखते, जैसे किसीको दौरा पड़ गया हो!

तब तक राकेश को लेकर लोगों ने तरह-तरह के विचार बनाने शुरू कर दिए थे, क्योंकि लोग लेखक के लेखन में उतनी दिलचस्पी नहीं लेते, जितनी कि उसकी व्यक्तिगत बातों में। लेकिन उस वक्त मैंने उससे कभी कोई बात

नहीं की···और मैं यह भी जानता था कि बावजूद सारी बातों के राकेश किसीके पूछने पर खुलेगा नहीं। वह गम पीना जानता है और उसे अकेले बरदाश्त करने की सागर जैसी क्षमता रखता है।

लेकिन वही गुरु-गम्भीर सागर एक दिन किनारों को लांघकर दूर-दूर तक धरती को भिगो गया···राकेश की आंखें गीली थीं और वह बार-बार चश्मा उतारकर अपनी आंखों को चुराकर पोंछता जा रहा था। मुझे गुस्सा आया, मन में आया कि कहूं, "कम्बख्त! जी खोलकर रो क्यों नहीं लेता!" और वह बाथरूम पूछता हुआ कमरे के बाहर चला गया। वहां से शायद वह रोकर आया था।

मैं चुप ही था, क्योंकि उसका अहं कभी भी यह बरदाश्त न करता कि उससे उसकी तकलीफों के बारे में कुछ भी पूछा जाए। फिर कुछ क्षणों बाद वह खुद ही फूट पड़ा था, "कमलेश्वर, स्थिति यह थी कि मैं आत्महत्या कर लेता! चार महीने से मांग-मांगकर कपड़े पहन रहा हूं! सचमुच, मैं जान दे देता!"

और मुझे लगा था कि कीर्तिनगर के अंधेरे कमरों में उसकी ज़िन्दगी की हर खुशी बन्द हो गई है और ज़िन्दगी की तलाश में मेरा यह दोस्त एक बार फिर मारा गया है। दुनिया उसके खिलाफ हो गई थी, एक तूफान चारों तरफ उमड़ रहा था और राकेश अपने मन के अंधड़ को दबाए-दबाए खानाबदोशों की तरह यहां से वहां भाग रहा था···दिल्ली, अमृतसर, जालन्धर, चण्डीगढ़, कलकत्ता, जमशेदपुर, बम्बई···पर उसे राहत नहीं मिल रही थी। और उस ७ फरवरी '६२ की सर्द सुबह जब वह मेरे घर आया, तो एकदम टूटा हुआ था—पैसे के दुश्मन ने अपना पर्स देखा और साठ-सत्तर रुपये देकर बोला, "राजपाल से पैसे लेने हैं! जेब में आज पाई नहीं है···"

मैं गौर से उसे देख रहा था, अभी-अभी उसने अपनी आंखें चोरी से सुखाई थीं, कुछ क्षण खामोश रहकर सोचा था और तंगदस्ती में भी टैक्सी

लेकर मेरे साथ निकल पड़ा था। दिल्ली में सचमुच कुछ लोग उसका पीछा कर रहे थे और वह जगह-जगह रुक-रुककर जैसे दम ले रहा था। पर टैक्सी से उतरते ही उसने टैक्सीवाले को पांच रुपये इनाम के थमा दिए थे और आगे बढ़कर गोल्ड फ्लेक का एक टिन खरीद लिया था।

दोपहर में हम अलग हो गए थे। वापस घर आया, तो राकेश की एक चिट पड़ी थी और बियर की दो बोतलें—दोनों खाली—एक में दो घूंट बियर और सिगरेट के टिन में एक सिगरेट—बाकी वह सब पी गया था और चिट पर लिखकर छोड़ गया था, "कोशिश करूंगा कि रात को नौ-साढ़े नौ बजे फिर आऊं। स्थिति काफी गम्भीर है। तुम्हें एक काम अवश्य करना है। सुबह फ्रण्टियर मेल पर पुरानी दिल्ली स्टेशन से अम्मा को रिसीव कर लेना और उन्हें अपने साथ यहीं ले आना···मैं किसी भी समय आकर मिल लूंगा!"

और इसी मुसीबत के समुद्र में डूबते-उतराते हुए भी उसकी विनोद-वृत्ति मरी नहीं थी, अन्त में चिट पर लिख गया था, "तुम्हारे हिस्से की बियर और सिगरेट छोड़े जा रहा हूं!" उसे उस वक्त कोसकर सिगरेट तो मैंने सुलगा ली थी, पर तली में पड़ी हुई दो घूंट बियर बोतल समेत फेंक दी थी।

फिर एक दिन दिल्ली से लापता हो गया।

ऊपर से देखने पर ये हरकतें निहायत गैर-ज़िम्मेदाराना हैं और इनपर गुस्सा भी आता है कि आखिर यह आदमी दोस्तों को समझता क्या है? दुनिया में सिर्फ अपने अधिकार के प्रति यह व्यक्ति सचेत है, इसे दूसरों की भावनाओं से कुछ भी लेना-देना नहीं···

और अधिकार की यह बात ज़िन्दगी के अलग-अलग सन्दर्भों में अर्थ बदलती जाती है। ऊपर से देखने पर लगता यही है कि राकेश अपने को कुछ ऐसा समझता है कि जिसके चारों तरफ सब लोग मंडराते रहें, उसका ख्याल रखें, उसकी मामूली से मामूली बात को गहराई से समझें और जो कुछ उसके लिए कर सकें, करें—क्योंकि यह उसका अधिकार है। ऐसे में

वह बहुत ही स्वार्थी और लापरवाह नज़र आता है, उससे चिढ़ होती है और लगता है कि अब इसके साथ चल पाना सम्भव नहीं है।

पर उसकी हरकतों का एक और पहलू धीरे-धीरे उजागर होने लगता है—वह इस बात का भूखा है कि कोई उसका है! यही उसकी अनवरत तलाश है···कोई उसका है और वह किसीका है···चाहे वह मां हो, दोस्त हो, बीवी हो या दो दिन का मुलाकाती! वह एकाएक अपना सब कुछ दे बैठता है, कहता कुछ भी नहीं, पर जिससे एक बार मिल लेता है। उसे वह गैर नहीं समझता। वह उसकी ज़िन्दगी के दायरे में आ जाता है।

अगर ऐसा न होता, तो कश्मीर में वह तीन दिन परेशान न घूमता। राकेश जब पहलगाम पहुंचा तो तय यही था कि सब दोस्त तम्बू लगाकर रहेंगे और सबके तम्बू अलग-अलग होंगे। राकेश पिछले साल भी पहलगाम आ चुका था और एक तम्बू वाले से तम्बू लगवाकर रह चुका था। पहलगाम पहुंचने पर पता लगा कि वह तम्बूवाला श्रीनगर गया हुआ है। वहां और भी बहुत-से तम्बूवाले थे, जो उसे घेर रहे थे, पर वह तीन दिन के उस ज़रा-सी जान-पहचान के तम्बूवाले के लिए इन्तज़ार करता रहा और जब वह वापस आया, तभी उसने अपना तम्बू लगवाया। उसने तकलीफ भी उठाई, पैसा भी खराब किया पर किसीसे जुड़े होने की यह सूक्ष्म भावना ही उसकी धरोहर है···

और गुरुद्वारा रोड के टैक्सी स्टैण्ड पर जब आठ महीने बाद एक दिन फिर वह मेरे साथ पहुंचा, तो वह उसी टैक्सीवाले को खोज रहा था, जिसने उसे मुसीबतज़दा दिनों में बाहिफाज़त पूरी दिल्ली घुमाई थी और जिसका नाम तक उसे याद नहीं था। और इस मायने में कम्बख्त की किस्मत भी बड़ी ज़ोरदार है—जिसे वह चाहता है, वह मिल भी जाता है!

यह सब तो मिल जाता है, पर उसे वह नहीं मिलता, जिसकी तलाश में वह हर क्षण भटक रहा है। उसे घर का वह सकून नहीं मिला, जो ज़िन्दगी को एक नया और स्वस्थ अर्थ देता है, जिसे आदमी मरते दम तक अपना कहता है और जीता है, जिसके लिए मौत से भी जूझता है और सारी परे-

शानियों के बावजूद सुख से रहता है। और शायद अब तो यह आदमी घर नाम की चीज़ का आदी ही नही रहा है। उसके सामने 'घर' का नाम लीजिए, तो वह भीतर ही भीतर घबरा जाता है, जैसे यह शब्द एक डर की गांठ बनकर उसके मन के भीतरी कोनो में समा गया है। हालांकि वह कभी भी इस बात को मंजूर नहीं करेगा, पर बहुत घेरने पर ही वह घर मिलने की बात मंजूर करता है, नहीं तो होटलों या रास्ते-राहतों में मिलने की बात ही तय करेगा। उसके लिए घर की महत्ता ही मिट चुकी है—वह अब घर में नहीं रहता, मकान में रहता है और अपने दोस्तों पर होटलों में रुपया पानी की तरह बहाता है···

और इसीलिए उसकी ज़िन्दगी में एक अजीब-सा बिखराव नज़र आता है। वह कहीं टिकता नहीं, क्योंकि अपने घर की परेशानियों के कारण वह दिल्ली में ही एक बस्ती से दूसरी में भागता रहा है···अपना सारा सामान और किताबों के अम्बार लिए-लिए घूमता रहा है। कुछ फ़र्नीचर कहीं छोड़ आया है, कुछ बक्से कहीं पटक आया है और कुछ सामान कहीं सौंप आया है। वह जैसे धीरे-धीरे अपने को हर तरह की ममता और लगाव से तोड़ता जा रहा है, पर इसमें वह सफल नहीं हो पाता, क्योंकि उसके पास ज़रूरत से ज़्यादा कोमल दिल है और वह सिर्फ अकेला रहकर जीने का आदी नहीं है।

शाम आती है, तो जैसे उसका वह कोमल दिल धड़कने लगता है। गहमा-गहमी से भरे शहरों में रहने का आदी यह आदमी दिन-भर मस्ती में रमा रहता है, पर जैसे-जैसे शाम गहरी होती जाती है तो अकेलेपन का उसका अहसास और बढ़ जाता है। अपने अकेलेपन से निजात पाने के लिए वह देर-देर तक दोस्तों की महफिलों में चुटकियां लेता है और ठहाके लगाता है। बात करने में इतना तेज़ और पुरमज़ाक है कि उसके साथ बैठना एक अच्छी शाम का गुज़रना हो जाता है। और तब काफी रात गए वह उठता है···और अपने 'मकान' पर चला जाता है। ऊपर से उसमें कहीं थकन नज़र नहीं आती, उसका शरीर भी ऐसा चोर है कि कुछ भी ज़ाहिर

नहीं होने देता, पर उसकी किसी एक बात में भीतर का घुमड़ता हुआ अकेलापन अनजाने ही धीरे से खुल जाता है, "अच्छा, अब चलना ही चाहिए..."

इस निहायत नेक दिल इन्सान और मुहब्बतपरस्त आदमी पर कुछ व्यक्तियों ने खुलकर प्रयोग करने चाहे हैं, उसे सिर्फ अपने लिए महदूद करना चाहा है और चारों तरफ से कसकर बांध लेना चाहा है। जब-जब ऐसा हुआ है, तो वह हमेशा छिटककर अलग खड़ा हो गया है। इसीलिए उसमें एक तुनुकमिज़ाजी आ गई है और भीतर ही भीतर एक ज़िद पैठ गई है। शायद ज़िद तो उसकी पुरानी आदत है पर बंधकर न रह सकने की आदत धीरे-धीरे जड़ पकड़ गई है। जब भी उसे कोई घिस-घिसाकर किसी भी एक तरह की ज़िन्दगी का पुर्ज़ा बनाने की कोशिश करता है, तो वह छिटककर अलग खड़ा हो जाता है और सारी मशीन एकाएक रुक जाती है। इसमें राकेश को शायद एक अजीब तरह का दर्द-भरा सन्तोष भी मिलता है। और एक मर्तबा जब वह यह कर लेता है, तो ज़िद्दी की तरह अड़ा रहता है। लेकिन यह सब वह करता तभी है, जब उसे अपना व्यक्तित्व जकड़ता हुआ नज़र आता है। तब वह अपनी परेशानियों की परवाह नहीं करता और हर तरह का गम उठाने के लिए तैयार हो जाता है। राकेश दूसरों की गलतियों को हद तक बरदाश्त करता जाता है, पर सहनशक्ति की सीमा टूटने पर वह जो तय करता है, उसपर ज़िद की हद तक चिपका रहता है। उसकी यह ज़िद कभी-कभी बड़ी बचकानी लगती है और जब उसकी ज़िद को तर्कों से घेरकर बेमानी साबित कर दिया जाता है, तो उसके पास आखिरी अस्त्र रह जाता है, "डियर, अब मन नहीं जमता !" यह एक ऐसी मासूम ज़िद है कि इसके सामने किसीका वश नहीं चलता। और उसकी यह बेहद मासूम ज़िद ही कहीं उसे टिकने नहीं देती।

ज़िन्दगी की गम्भीर से गम्भीर और अहम बातों को सुलझाने के लिए उसके पास कई अकसीर नुसखे हैं। एक नुसखा बहुत ही लाजवाब है और

उन सभी साहित्यकारों के लिए फायदेमन्द है, जो नौकरियों में लगे हुए हैं और हर क्षण नौकरी छोड़ने की बात करते हैं। वह आपसे बड़ी गम्भीरता से पूछेगा, "नौकरी छोड़ने की बात सोच रहे हो ?"

"हां !"

"कुछ तय नहीं कर पा रहे हो ?"

"हां !"

"सुबह दस बजे कपड़े पहनकर दफ्तर जाने का उत्साह मन में होता है ?"

"इसका क्या मतलब ?"

"अगर कपड़े बदलकर दफ्तर जाने को मन करता हो, तो तुम्हें नौकरी करनी चाहिए, अगर न करता हो, तो छोड़ देनी चाहिए ! और कुछ सोचने की ज़रूरत नहीं है—सीधा-सादा नुसखा है..."

और खुद राकेश नौकरियां छोड़ने के लिए बदनाम रहा है। एक यह बहुत बड़ा इल्ज़ाम भी उसके सिर पर है। अच्छी से अच्छी नौकरी छोड़कर वह चला आया है। लोग उसे मनाते रहे हैं, पर इस मस्तमौला ने कभी यह नहीं सोचा कि आगे क्या होगा। भविष्य की चिन्ता करना उसकी आदत में नहीं है। जो उसके हाथ में है, उसे लेकर वह भरपूर ज़िन्दगी जीने का आदी है। भविष्य की चिन्ता कीजिए तो एक और नुसखा उसके पास है, "कम से कम पांच सौ में गुज़ारा हो जाएगा ! है न ! तो सूद पर तीन हज़ार क़र्ज़ लो और आराम से बेफ़िक होकर छः महीने में छः हज़ार का काम करो...फ़िक्र किस बात की है !" इस तरह की निहायत बेमिशाल अव्यावहारिक योजनाएं उसके पास हैं...शेखचिल्ली की तरह वह एक मिनट में सब हिसाब लगाकर बता देगा और दूसरे मिनट भूल जाएगा। तीसरे मिनट खुद जाकर कहीं चार सौ रुपये महीने का शानदार फ्लैट किराये पर ले लेगा चाहे जेब में पन्द्रह दिन के क़िराये के पैसे न हों।

इन हरकतों के बावजूद और इन सारी अव्यावहारिक योजनाओं के

साथ भी उसके दिलोदिमाग में एक बात सबसे ऊपर रहती है—"हम लेखन के बल पर क्यों नहीं जी सकते ? क्यों नहीं जी सकते ? हमारा यह हक है कि हम लिखकर इज़्ज़त से जी सकें···" और अपनी इस ईमानदारी से भरी तड़प के लिए वह अपने पर प्रयोग करता है, लड़ता-झगड़ता और नौकरियां छोड़ता है। जब-जब यह मसला हमारे बीच उठा है, राकेश मुझे सबसे ज़्यादा गम्भीर दिखाई दिया है। यह बात करते-करते उसकी आंखों में हज़ार रंग आते-जाते हैं—गुस्से के, नफरत के, विश्वास के और बेबसी-भरी परेशानी के···और वह एक के बाद एक सिगरेट मसल-मसलकर फेंकता जाता है···उसकी आत्मा जैसे भीतर ही भीतर भयंकर रूप से आन्दोलित होती है और सिगरेटें खत्म होते ही वह उठ खड़ा होता है, "यार सिगरेट ले आएं !" और बात धुएं की तरह खामोशी से घुमड़ती रह जाती है। इस बात का सिर्फ आर्थिक पक्ष ही नहीं है, बल्कि इसके साथ ज़िन्दगी के वे सारे अहम सवाल भी जुड़े होते हैं, जिन्हें हल किए बग़ैर कोई भी आदमी एक नेक और ईमानदार इन्सान की ज़िन्दगी नहीं जी सकता।

और इसी नेकी और ईमानदारी से भरी ज़िन्दगी की तलाश में वह धोखा खाता आया है। भावुकता और आदर्श की चट्टान पर राकेश को बार-बार पटका गया है और उसके अतिभावुक क्षणों में उसे बार-बार कैद किया गया है। अपनी इसी कमज़ोरी के कारण उसने बार-बार अपने को अनजाने ही दांव पर लगाया है और गलतियों की हद तक गया है। अपनी परवाह किए बग़ैर उसने दूसरों के गमों को हलका करने के लिए स्वयं को समर्पित किया है और लगातार एक बेहतर ज़िन्दगी की तलाश में भटकता रहा है एक ज़िन्दगी और···एक और ज़िन्दगी···खामोशी से वह यही खोजता रहा है···

उसकी यही खोज उसके भावुक मन को मथती रही है, दुखों से लोहा लेने और उन्हें हंसकर उड़ा देने की शक्ति देती रही है और सृजन के क्षणों में उसे वह संतुलन देती रही है, जो बहुत कम लेखकों को नसीब होता है। अपने ऐकांतिक दुखों और पीड़ाओं को इसीलिए उसने बड़ी गहराई से बहुतों

के दुखों से जोड़ा है। अपने गहरे से गहरे और सहे न जा सकने वाले दुखों को भी उसने एक बेरहम आधुनिक सर्जन की तरह चीर-फाड़कर देखा है और उन कारणों को खोजने की कोशिश की है, जो मानसिक-वैचारिक स्तर पर बराबर टीसते रहते हैं। वह दिमागी ज़ख्मों को पालने का आदी नहीं है, न वह अपने ज़ख्मों को दुलारता है न दूसरों के ज़ख्मों में रस लेता है। वह सीधे नश्तर लगाने में विश्वास करता है। लेकिन एक बेहद भावप्रवण और चेतनाशील कलाकार होने के नाते उसका हर नश्तर कई स्तरों पर काटता है और यही वजह है कि उसकी हर रचना एक से ज़्यादा अर्थों को लेकर चलती है, कई स्तरों पर कचोटती है।

कभी-कभी मेरा यह दोस्त ज़रा ज़्यादा गम्भीर बनने की कोशिश भी करता है, और ओंठ फैलाकर धुआं उगलते हुए बात करता है। पी-पिला लेने के बाद कुछ बड़ी अहम बातों पर चर्चा शुरू करता है, बाकी सबको नशे में समझकर खुद बड़ी पायदार, पर बहकी-बहकी बातें करता है, दुनिया-जहान की सारी ज़िम्मेदारियां ओढ़ लेता है और साहित्य को सही रास्ते पर लाने के लिए, गुमराह दोस्तों को संभालने के लिए, किसीकी बिगड़ी बनाने के लिए या साहित्यिक दलों में मेल कराने के लिए, नये से नये लेखकों को ऊपर लाने के लिए, सारे ज़ुल्मों और ज़्यादतियों को खत्म करने के लिए, खुद टोपी लगाकर नेता बन जाता है और बड़ी ऊंचाई से आदर्श-भरा भाषण देता है। भाषण दे चुकने के बाद वह सिगरेट जलाता है और ओढ़ी हुई गुरुता के बोझ और गम्भीरता के आवरण में से ओंठ फैला-फैलाकर धुआं उगलते हुए सामने बैठे निरीह श्रोताओं को देखता है और मन ही मन बहुत खुश होता है···

तभी ले-दे शुरू हो जाती है, और मेरे इस यार की जो दुर्गत होती है वह देखने लायक ही होती है। उस वक्त मेरा यह दोस्त बगलें झांकता हुआ अपनी ही बात से निकल भागने की कोशिश करता है और साल-भर बाद अपनी उस गलती को पछता-पछताकर और मज़ा ले-लेकर स्वीकारता है।

और इस सारे नाटक में कभी-कभी कुछ लोग राकेश को दम्भी, बनावटी और स्नॉव भी समझ बैठते हैं। उनका यह समझना बहुत गलत भी नहीं होता क्योंकि वे उसके सम्पर्क में बहुत ज़्यादा नहीं आ पाते। ख्याति, सम्मान और यश के बावजूद दम्भ नाम की चीज़ कतई इस आदमी में नहीं है और न यह आदमी काल्पनिक सृष्टि और आडम्बरपूर्ण वातावरण में रहने का हामी है। इसके बरक्स वह हर उस स्थिति को तोड़-मरोड़कर फेंक देता है, जिसमें बनावटीपन की बू आती है—कभी-कभी तो वह ऐसी स्थितियों के खिलाफ जिहाद बोल देता है।

चूंकि राकेश बनावट में रहने का आदी नहीं है, इसलिए वह अधूरी ज़िन्दगी जीने का कायल भी नहीं है। वह पैसे से, मन से, यार-दोस्तों, साथी-संगियों के साथ पूरी जागरूकता और संचेतना के साथ रहने का तलबगार है। वह आदमी की ममता, अपनत्व और लगाव को रोज़-रोज़ नहीं तौलता, न खुद तुलने के लिए तैयार होता है।

रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में वह आधुनिक सुविधाओं के साथ आधुनिक आदमी की तरह रहने का कायल है, बदलते हुए ज़माने के साथ कदम मिलाकर चलने के लिए मजबूर है। यही वजह है कि वह दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता में ही रहने की बात सोच सकता है, क्योंकि वह मन और कर्म से दो अलग-अलग इकाइयों में विभाज़ित नहीं है। अच्छा या बुरा—वह जैसा भी है, एक सम्पूर्ण व्यक्ति है।

और आज ज़माने में हर सम्पूर्ण व्यक्ति की ट्रेजेडी यही है कि लोग उसे काट-काटकर अपने-अपने लिए बांट लेना चाहते हैं और जब इस तरह के बंटबारे किए जाते हैं, तो वह विद्रोह करता है और भागता है···

यही मानसिक संकुलता तीर की तरह उसका पीछा कर रही है और वह सताए हुए इन्सान की तरह सकून की खोज में एक जगह से दूसरी जगह खानाबदोशों की तरह भागता फिर रहा है। अपने मन के पैर जमाने के लिए उसे बेतहाशा भागना पड़ रहा है। लगता यह है कि वह सब कुछ तोड़-फोड़कर दम लेगा और एक निहायत अनुशासनहीन ज़िंदगी का गुलाम हो

जाएगा···वह जैसे रह-रहकर बिगड़े हुए बच्चे की तरह मचल उठता है···

और यही सबसे बड़ा इल्ज़ाम उसपर है कि वह टिकता नहीं, वह निहायत गैर-ज़िम्मेदार और अनुशासनहीन व्यक्ति है, वह संवेगों के आवेश में काम करता है, एक सही काम करते-करते तुनककर गलत काम कर बैठता है और डाकबंगलों में रहने को ही ज़िन्दगी समझता है···

ऊपर से यह सब सही लगता है। आज वह बम्बई में है, कल वह अफ्रीका में भी हो सकता है ! बड़ी बेतरतीब ज़िन्दगी है मेरे दोस्त की, पर सतह के नीचे उतरते ही एक ज़बरदस्त अनुशासन दिखाई पड़ता है। वह अनुशासन है दिमाग का और सृजन का। ऊपरी ज़िन्दगी में वह जितना असंगठित और बिखरा हुआ दिखाई देता है, उतनी ही संगठित और सुव्यवस्थित है उसके लिखने की प्रक्रिया। जितने मसल-मसलकर वह सिगरेट के टुकड़े जगह-जगह फेंकता है, उतने ही करीने से वह अपने विचार और अनुभवों को सजाता है। उसके कफ कोट की आस्तीन से चाहे छः अंगुल बाहर निकले रहें, पर कहानी में कलात्मक असंतुलन की कोर नज़र नहीं आ सकती।

और सृजन के इसी संतुलन, संवरण, संगठन और अनुशासन के लिए यह आदमी भागता है—कभी कश्मीर, कभी डलहौज़ी, कभी शिमला और कभी सुनसान वीरानों में। उसमें सौन्दर्य की एक अनबूझ भूख है···गहन मानवीय संवेदनाओं में रसा-बसा यह अभिशापित यक्ष किसी आषाढ़ के एक दिन के इन्तज़ार में घाटियों, पहाड़ों और डाकबंगलों में भटक रहा है—एक हर्फेतसल्ली के लिए···वह हर्फेतसल्ली है उसका लिखना, जो उसे कुछ क्षणों की राहत देता है और उन क्षणों के बाद मेरा यह भाई, मेरा यह दोस्त फिर बहुत अकेला हो जाता है। पहलगाम और गुलमर्ग की खूबसूरती में रमते हुए भी उसकी आंखों की उदासी और सीने की जलन नहीं मिटती। नीली पहाड़ियां, फूटते हुए चश्मे, झूमरें हिलाते हुए चीड़-वन और संन्यासियों की तरह खड़े देवदारों के अतुलनीय सौन्दर्य के बीच उसे किसी मिस

पाल की ट्रेजेडी और उसकी ज़िन्दगी का निपट सूनापन ज़्यादा कचोटता है। वह वहां सौदा करते लोगों को देखता है और एक प्याली चाय के लिए जोड़-तोड़ करते मन्दी के मारे इन्सान को समझने की कोशिश करता है···

जब भी वह पहाड़ से लौटता है तो बेहतरीन चीज़ें लाता है—यही उसका सबसे बड़ा गुनाह है। अगर वह यह गुनाह न करता, तो उसके बारे में कोई बात न करता। अदालतें चाहे जितनी हों, वह किसी अदालत की परवाह नहीं करता···मुसीबतें चाहे जितनी आएं, वह अपनी परेशानियों की बात नहीं करता। अगर आप बात करेंगे, तो जैसे वह फ़िराक के शब्दों में कहेगा :

कुछ क़फ़स की तीलियों से
छन रहा है नूर-सा—
कुछ फ़ज़ा, कुछ हसरते-
परवाज़ की बातें करो !



# जानवर और जानवर

स्कूल की नई मेट्रन का नाम अनिता मुकर्जी था और उसकी आंखें बहुत अच्छी थीं। परन्तु क्योंकि वह आंट सैली की जगह पर आई थी, इसलिए पहले दिन बैचलर्स डाइनिंग रूम में किसीने उससे खुलकर बात नहीं की।

उसने जॉन से बात करने की चेष्टा की तो वह 'हूं-हां' में उत्तर देकर टालता रहा। मणि नानावती को वह अपनी चायदानी में से चाय देने लगी तो उसने हल्का-सा धन्यवाद देकर मना कर दिया। पीटर ने अपना चेहरा ऐसा गम्भीर बनाए रखा जैसे उसे बात करने की आदत ही न हो। किसी तरफ से लिफ्ट न मिलने पर वह भी चुप हो गई और जल्दी से खाना समाप्त करके उठ गई।

"अब मेरी समझ में आ रहा है कि पादरी ने सैली को क्यों निकाल दिया," वह चली गई तो जॉन ने अपनी भूरी आंखें पीटर के चेहरे पर स्थिर करके कहा।

पीटर की आंखें नानावती से मिलीं। नानावती दूसरी ओर देखने लगी।

वैसे उन लोगों में से कोई नहीं जानता था कि आंट सैली को फादर फिशर ने क्यों निकाल दिया। उसके जाने के दिन से ही जॉन मुंह ही मुंह बड़बड़ाकर अपना असन्तोष प्रकट करता रहता था। पीटर भी उसके साथ दबे-दबे कुढ़ लेता था।

"चलकर एक दिन सब लोग पादरी से बात क्यों नहीं करते ?" एक

बार हकीम ने तेज़ स्वर में कहा।

जॉन ने पीटर को आंख मारी और वे दोनों चुप रहे। दूसरे दिन सुबह पादरी के सिरदर्द की खबर पाकर हकीम उसकी मिज़ाजपुर्सी के लिए गया तो जॉन पीटर से बोला, "ए, देखा ? पहुंच गया न उसके तलुवे सूंघने ? सन आव् ए गन ! हमें उल्लू बनाता था।"

आंट सैली के चले जाने से बैचलर्स डाइनिंग रूम का वातावरण बहुत रूखा-सा हो गया था। आंट सैली के रहते वहां के वातावरण में बहुत घरेलूपन रहता था—सरदी में तो खास तौर पर आंटी के बीच में आ बैठने से वह कमरा एक परिवार का भरा-पूरा घर बन जाता था। वह अपनी कमर पर हाथ रखे बाहर से ही मज़ाक करती हुई आती थी :

"पीटर के लिए आज मगज़ का शोरबा बना है, या वह मेरा ही मगज़ खाएगा ?"

या—

"...हो हो हो ? मुझे नहीं पता कि आज मणि इस तरह गज़ब ढा रही है, नहीं तो मैं भी ज़रा सज-संवरकर आती।"

ऐसे मौके पर पाल उसके सफेद बालों पर बंधे लाल या नीले रंग के फीते की ओर संकेत करके कहता, "आंटी, यह फीता बांधकर तुम बिलकुल दुलहिन जैसी लगती हो।"

"अच्छा, दुलहिन जैसी लगती हूं ? तो कौन करेगा मुझसे ब्याह ? तुम करोगे ?" और उसकी आंखें मिच जातीं, ओंठ फैल जाते और उसके गले से छलछलाती हुई हंसी का स्वर सुनाई देता।

एक बार पीटर ने कहा, "आंटी, पाल कह रहा था कि वह आजकल में तुमसे ब्याह के लिए प्रस्ताव करने वाला है।"

आंटी ने चेहरा ज़रा तिरछा करके आंखें पीटर के चेहरे पर स्थिर किए हुए उत्तर दिया, "तो मुझे और क्या चाहिए ? मुझे एकसाथ पति भी मिल जाएगा और बेटा भी।"

और फिर वही हंसी, जैसे पानी के वेग में छोटे-छोटे पत्थर फिसलते

चले जाएं।

आंट सैली के चले जाने से अकेले लोगों का वह परिवार काफी उखड़ गया था। कुछ दिन पहले इसी तरह मीराशी चला गया था। उसके बाद फिर पाल की छुट्टी कर दी गई थी। मीराशी तो खैर बिगड़ैल आदमी था, मगर पाल को बैंचलर्स डाइनिंग रूम के बैचलर्स—जिनमें दो स्त्रियां सम्मिलित थीं—बहुत चाहते थे। हालांकि जॉन को पाल का अंग्रेज़ी फिल्मों के बटलर की तरह अकड़कर चलना पसन्द नहीं था और उन दोनों की प्रायः आपस में झड़प हो जाती थी, फिर भी उसकी पीठ के पीछे वह उसकी तारीफ ही करता था। जिस दिन पाल चला गया, उस दिन जॉन खिड़की के पास बैठा सिर हिलाकर पीटर से कहता रहा, "अच्छा हुआ जो यह लड़का यहां से चला गया। अभी तो यह बाहर जाकर कुछ बन जाएगा, वर्ना यहां रहकर इसका क्या बनना था? तुम भी जवान हो, तुम यहां किसलिए पड़े हुए हो?"

और पीटर घड़ी को चाबी देता हुआ चुपचाप दीवार को देखता रहा।

पाल और मीराशी के निकाले जाने की वजह का तो खैर सबको पता था। मीराशी का बिलकुल सीधा अपराध था कि उसने फादर फिशर के माली को पीट दिया था। पाल का अपराध दूसरी तरह का था। उसने आवारा नस्ल का एक हिन्दुस्तानी कुत्ता पाल लिया था जिसे वह हर समय अपने साथ रखता था। हालांकि कुत्ते में कोई ऐसी खासियत नहीं थी, बहुत सादा-सी सूरत, फीका बादामी रंग और लम्बूतरा-सा उसका कद था, फिर भी क्योंकि पाल ने उसे पाल लिया था इसलिए वह उसे बहुत लाड़ से रखता था। उसने उसका नाम बेबी रखा था और कई बार उसे बगल में लिए हुए खाना खाने आ जाता था। जल्दी ही बेबी बैंचलर्स डाइनिंग रूम में खाना खानेवाले सब लोगों का बेबी बन गया, एक मणि नानावती को छोड़कर, जो उसकी सूरत देखते ही घबरा जाती थी। घबराहट में उसके चेहरे का रंग सुर्ख हो जाता था और उसका नाटा छरहरा शरीर

अपने काबू में नहीं रहता था। एक बार बेबी उसके हाथ में हड्डी देख-कर उसके घुटने पर चढ़ने की कोशिश करने लगा तो वह घबराकर कुरसी पर खड़ी हो गई और दोनों हाथ हवा में हिलाती हुई चिल्लाने लगी, "ओई ओई हिश ! गो अवे ! प्लीज़ पाल, टेक हिम अवे ! प्लीज़..."

पाल पुलाव का चम्मच मुंह के पास रोककर धूर्तता के साथ मुस्कराया और बेबी को डांटकर बोला, "चल इधर बेबी ! खानदान को बदनाम करता है ?"

मगर बेबी को हड्डी का कुछ ऐसा शौक था कि वह डांट सुनकर भी नहीं हटा। वह नानावती की कुरसी पर चढ़कर उसके जिस्म के सहारे खड़ा होने की चेष्टा करने लगा। इस जद्दोजहद में नानावती कुरसी से गिरने जा रही थी कि पाल ने जल्दी से उठकर उसे बगल से पकड़कर नीचे उतार दिया। फिर उसने बेबी को दो चपत लगाईं और उसे कान से खींचता हुआ अपनी सीट के पास ले आया। बेबी के पाल की टांगों के आसपास मंडराने लगा।

"मेरा सारा ब्लाउज़ खराब कर दिया !" नानावती हांफती हुई रूमाल से अपना ब्लाउज़ साफ करने लगी। उसके उभार पर एकाध जगह बेबी का मुंह छू गया था।

बेबी अब पाल के घुटने से अपनी नाक रगड़ रहा था। पाल ने उसकी पीठ सहलाते हुए कहा, "नॉटी चाइल्ड ! ऐसी भी क्या शरारत कि इन्सान एटिकेट तक भूल जाए !"

जॉन पीटर की तरफ देखकर मुस्कराया.। नानावती भड़ककर बोली, "देखो पाल, मुझे इस तरह का मज़ाक कतई पसन्द नहीं।" क्रोध से उसका पूरा शरीर तमतमा आया। यदि वह और शब्द बोलती तो साथ रो देती।

परन्तु उसे गम्भीर देखकर भी पाल गम्भीर नहीं हुआ। बोला, "मुझे खुद ऐसा मज़ाक पसन्द नहीं मादाम ! मैं इसकी हरकत के लिए बहुत

शर्मिन्दा हूं !" और उसके निचले ओंठ पर हल्की-सी मुस्कराहट आ गई।

नानावती क्षण-भर रुंधे हुए आवेश के साथ पाल को देखती रही। फिर अपना नेपकिन मेज़ पर पटककर वह तेज़ी से उठकर कमरे से चली गई। उसके जाते ही जॉन ने अपनी भूरी आंखें फैलाकर सिर हिलाया और कहा, "आज तुम्हारे साथ कुछ न कुछ होकर रहेगा। वह अब सीधी शुतुर-मुर्ग के पास शिकायत करने गई है···कुतिया !"

परन्तु नानावती ने कोई शिकायत नहीं की। बल्कि दूसरे दिन सुबह उसने पाल से अपने व्यवहार के लिए क्षमा मांग ली। जॉन को अपनी भविष्यवाणी के गलत निकलने का खेद तो हुआ, पर इससे नानावती के प्रति उसका व्यवहार पहले से बदल गया। उसने उसकी अनुपस्थिति में उसके लिए वेश्यावाचक विशेषणों का प्रयोग करना बन्द कर दिया। यहां तक कि एक दिन वह एटकिन्सन के साथ इस सम्बन्ध में विचार करता रहा कि इतनी अच्छी और मेहनती लड़की को उसके पति ने घर से क्यों निकाल रखा है।

नानावती ने भी उसके बाद बेबी को देखते ही 'ओइ ओई हिश' करना बन्द कर दिया। गाहे-बगाहे वह उसे देखकर मुसकरा भी देती। एक बार तो उसने बेबी की पीठ पर हाथ भी फेर दिया, यद्यपि हाथ फेरते हुए वह सिर से पांव तक सिहर गई।

बैचलर्स डाइनिंग रूम में पाल के ज़ोर-ज़ोर के कहकहे रात को दूर तक सुनाई देते। बेबी को लेकर नानावती से तरह-तरह के मज़ाक किए जाते। मज़ाक सुनकर जॉन की भूरी आंखों में चमक आ जाती और वह सिर हिलाता हुआ मुस्कराता रहता।

मगर एक दिन सुबह बैचलर्स डाइनिंग रूम में सुना गया कि रात को फादर फिशर ने बेबी को गोली से मार दिया है।

जॉन अपनी चुंधियाई हुई आंखों को मेज़ पर स्थिर किए चुपचाप आमलेट काटकर खाता रहा। नानावती का छुरी वाला हाथ ज़रा-ज़रा कांपने लगा। एक बार सहमी हुई नज़र से जॉन और पीटर को देखकर वह

अपनी नज़रें प्लेट पर गड़ाए रही। पीटर स्लाइस का टुकड़ा काटने में इस तरह व्यस्त हो रहा जैसे बहुत महत्त्वपूर्ण काम कर रहा हो।

"पाल अभी नहीं आया, ए?" जॉन ने किरपू से पूछा।

"किरपू ने नमकदानी पीटर के पास से हटाकर जॉन के सामने रख दी।

"नहीं।"

"वह आज आएगा? हिः!" जॉन ने आमलेट का बड़ा-सा टुकड़ा काटकर मुंह में भर लिया।

"बेज़बान जानवर को इस तरह मारने से···मैं कहता हूं···मैं कहता हूं···" आमलेट जॉन के गले में अटक गया।

किरपू चटनी की बोतल रखने के बहाने जॉन के कान के पास फुसफुसाया, "पादरी आ रहा है!"

सबकी नज़रें प्लेटों पर जम गईं। पादरी लबादा पहने, बाइबल लिए गिरजे की तरफ जा रहा था। वह खिड़की के पास से गुज़रा तो तीनों अपनी-अपनी कुरसी से आधा-आधा उठ गए।

"गुड मॉर्निंग होली फादर!"

"गुड मॉर्निंग माई सन्ज़!"

"आज अच्छा सुहाना दिन है!"

"परमात्मा का शुक्र करना चाहिए।"

पादरी खट्टी की बाड़ से आगे निकल गया तो जॉन बोला, "यह अपने-आपको पादरी कहता है! सवेरे परमात्मा से संसार-भर का चरित्र सुधारने के लिए प्रार्थना करेगा और रात को···हरामज़ादा!"

नानावती सिहर गई।

"ऐसी गाली नहीं देनी चाहिए," वह दबे हुए और शंकित स्वर में बोली।

"तुम इसे गाली कहती हो?" जॉन आवेश के साथ बोला। "मैं कहता हूं, इसमें ज़रा भी गाली नहीं है। तुम्हें इसकी करतूतों का पता नहीं है? यह पादरी है?"

नानावती का चेहरा फीका पड़ गया। उसने शंकित दृष्टि से इधर-उधर देखा, परन्तु चुप रही। जॉन के चौड़े माथे पर कई लकीरें खिच गई थीं। वह बोतल से चटनी उडेलने लगा, जैसे उसीपर सारा गुस्सा निकाल लेना चाहता हो।

पीटर सारा समय खिड़की से बाहर की ओर देखता रहा।

डिंग डांग ! डिंग डांग ! गिरजे की घण्टियां बजने लगीं। नानावती जल्दी से नेपकिन से मुंह पोंछकर उठकर खड़ी हुई और क्षण-भर दुविधा में खड़ी रहकर सहसा बाहर चली गई।

"चुहिया ! कितना डरती है, ए ?" जॉन बोला।

मिसेज़ मर्फी एटकिसन के साथ बात करती हुई खिड़की के पास से निकलकर चली गई। गिरजे की घण्टियां लगातार बज रही थीं—डिंग डांग ! डिंग डांग ! डिंग डांग !

जॉन जल्दी-जल्दी चाय के घूंट भरने लगा। जल्दी में चाय की कुछ बूंदें उसके गाउन पर गिर गईं।

"गाश् !" वह प्याली रखकर रूमाल से गाउन साफ करने लगा।

"गिरजे नहीं चल रहे ?" पीटर ने उठते हुए पूछा।

"जॉन ने जल्दी-जल्दी दो-तीन घूंट भरे और शेष चाय छोड़कर उठ खड़ा हुआ। उनके दरवाज़े से निकलते ही किरपू और ईसरसिंह में बचे हुए मक्खन के लिए छीना-झपटी होने लगी, जिसमें एक प्याली गिरकर टूट गई। हकीम और बैरो को आते देखकर ईसरसिंह जल्दी से भागकर पैंट्री में चला गया और किरपू कपड़े से मेज़ साफ करने लगा।

हकीम कन्धे झुकाकर चलता हुआ बैरो को रात की घटना सुना रहा था। डाइनिंग रूम के पास आकर उसका स्वर और धीमा हो गया—"यू सी, बेबी को डॉली के साथ देखते ही पादरी को एकदम गुस्सा आ गया और वह अन्दर जाकर अपनी राइफल निकाल लाया। एक ही फायर में उसने उसे चित कर दिया। डॉली कुछ देर बिटर-बिटर पादरी को देखती रही। फिर बाड़ के पीछे की तरफ भाग गई। बाद में सुना है पादरी ने उसे

गरम पानी से नहलवाया और डॉक्टर को बुलाकर उसके इंजेक्शन भी लगवाए···

"कहां पादरी की बिस्कुट और सैंडविच खाकर पली हुई कुतिया और कहां बेचारा वेवी !" बैरो मुस्कराया।

"मगर उस बेचारे को क्या पता था ?"

वे दोनों हंस दिए।

"वेवी को मालूम होता कि यह कुतिया कैनेडा से आई है और इसकी कीमत तीन सौ रुपया है, तो शायद वह···"

और वे दोनो फिर हँस दिए।

"यह तो था कि कल पादरी ने देख लिया, मगर इससे पहले अगर···"

बैरो ने हकीम को आंख मारी। वह सहसा चुप कर गया। बाड़ के मोड़ के पास जॉन और पीटर खड़े थे। पीटर अपने जूते का फीता ठीक कर रहा था।

"गुड मॉर्निंग पीटर !"

"गुड मार्निंग बैरो।"

"आज बहुत चुस्त लग रहे हो। बाल आज ही कटाए हैं ?"

"नहीं, दो-तीन दिन हो गए।"

"बहुत अच्छे कटे हैं।"

"शुक्रिया।"

सहसा डिंग डांग की आवाज़ रुक गई। वे सब तेज़ी से बढ़कर गिरजे के अन्दर चले गए।

पन्द्रहवां साम गाने के बाद प्रार्थना आरम्भ हुई। सब लोग घुटनों के बल होकर और आंखों पर हाथ रखकर पादरी के साथ-साथ बोलने लगे :

"—अवर फादर, हू आर्ट इन हैवन, हैलोड बी दाई नेम, दाई किंगडम कम, दाई विल बी डन, इन दिस वर्ल्ड एज़ इन हैवन···"

बैरो ने प्रार्थना करते हुए बीच में अपनी बीबी के कान के पास फुसफुसाकर कहा, "मेरी, तुम्हारा पेटीकोट दिखाई दे रहा है।"

मेरी एक हाथ आंखों पर रखे हुए दूसरे हाथ से अपना स्कर्ट नीचे सरकाने लगी।

"...नाउ एण्ड फॉर एवर मोर, आमेन।"

गिरजे में उस दिन और उससे अगले दिन पाल की सीट खाली रही। इस बात को लक्षित हरएक ने किया, मगर किसीने इस बारे में दूसरे से बात नहीं की। पाल ईसाई नहीं था मगर फादर फिशर के आदेशानुसार स्टाफ के हर सदस्य का गिरजे में उपस्थित होना अनिवार्य था—जो ईसाई नहीं थे उनका रोज़ आना और भी ज़रूरी था। पादरी गिरजे से निकलता हुआ उन लोगों की सीटों पर एक नज़र अवश्य डाल लेता था। तीसरे दिन भी पाल अपनी सीट पर दिखाई नहीं दिया तो पादरी गिरजे से निकलर सीधा स्टाफ रूम में पहुंच गया। वहां पाल एक कोने में मेज़ के पास खड़ा कोई मैगज़ीन देख रहा था। पादरी उसके पास पहुंच गया तो भी उसकी तनी हुई गरदन में खम नहीं आया।

"गुड मॉर्निंग पादरी!" वह क्षण-भर के लिए आंख उठाकर फिर मैगज़ीन देखने लगा।

"तुम तीन दिन से गिरजे में नहीं आए," उत्तेजना में पादरी का हाथ पीठ के पीछे चला गया। वह बहुत कठिनता से अपने स्वर को संयत रख पाया था।

"जी हां, मैं तीन दिन से नहीं आया," मैगज़ीन नीचे करके उसने गम्भीर दृष्टि से पादरी को देखा।

"मैं कारण जान सकता हूं?"

"कारण कुछ भी नहीं।"

पादरी ने उत्तेजना के मारे बाइबल को दोनों हाथों में भींच लिया और तेवर डालकर कहा, "तुम जानते हो कि जो अच्छा-भला होकर भी सुबह गिरजे में प्रार्थना करने नहीं आता उसे यहां रहने का अधिकार नहीं?"

क्रोध के मारे पाल के जबड़ों के पास मांस में खिचाव आ गया था। उसने मैगज़ीन मेज़ पर रखकर हाथ जेबों में डाल लिए और बिलकुल

सीधा खड़ा हो गया। बड़ी खिड़की के पास जॉन नज़र झुकाए बैठा था। और आठ-दस लोग नोटिस बोर्ड और चिट्ठियों वाले रैक के आसपास खड़े अपने को किसी न किसी तरह व्यस्त ज़ाहिर करने की चेष्टा कर रहे थे। उनमें से किसीने पाल के साथ आंख नहीं मिलाई। पाल का गला ऐसे कांप रहा था जैसे वह कोई बहुत सख्त बात कहने जा रहा हो।

"पादरी, हम जो गिरजे में प्रार्थना करते हैं, उसका कोई मतलब भी होता है?"

एक लकीर दूर तक खिचती चली गई। पादरी का चेहरा क्रोध से स्याह हो आया।

"तुम्हारे कहने का मतलब है···" उसके दांत भिंच गए और वाक्य पूरा नहीं हुआ। नोटिस बोर्ड के पास खड़े लोगों के चेहरे फक हो गए।

"मेरा मतलब है पादरी, कि रात को हम गरीब जानवरों को गोली से मारते हैं और सुबह गिरजे में जाकर उनकी रक्षा के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं, इससे कुछ मतलब निकलता है?"

पादरी पल-भर खून-भरी आंखों से पाल को देखता रहा। उसकी सांस तेज़ हो आई थी।

"मतलब निकलता है और वह यह कि हर जानवर एक-सा नहीं होता जानवर और जानवर में फर्क होता है," उसने दांत भींचकर कहा और पास के दरवाज़े से बाहर चला गया, हालांकि उसके घर का रास्ता दूसरी ओर के दरवाज़े से था।

पन्द्रह मिनट बाद स्कूल का क्लर्क आकर पाल को चिट्ठी दे गया कि उस दिन से उसे नौकरी से बरखास्त कर दिया गया है; वह चौबीस घण्टे के अन्दर-अन्दर क्वार्टर खाली करके चला जाए।

"यह पादरी नहीं, राक्षस है," जॉन मुंह ही मुंह बड़बड़ाया।

पीटर को उस दिन शहर में काम हो गया, इसलिए वह रात को बहुत देर से लौटकर आया। हकीम और बैरो खेल के मैदानों की जांच में व्यस्त रहे। नानावती को हल्का-सा ज्वर हो आया। पाल को चलते समय केवल

जॉन ही अपने कमरे में मिला। वह अपनी खिड़की में रखे हुए गमलों को ठीक कर रहा था।

"जा रहे हो ?" उसने पाल से पूछा।

"हां, तुमसे गुड बाई कहने आया हूं।"

जॉन गमलों को छोड़कर अपनी चारपाई पर आ बैठा।

"मैं जवान होता तो मैं भी तुम्हारे साथ चलता" उसने कहा, "मगर मुझे यहां से निकलकर पता नहीं कब्र की राह भी मिलेगी या नहीं। मेरी हड्डियों में ज़ोर होता तो तुम देखते···"

पाल ने मुस्कराकर उसका हाथ दबाया और वापस चल दिया।

"विश यू वेस्ट आफ लक।"

"थैंक यू।"

पाल के चले जाने पर आंट सैली ने बैचलर्स डाइनिंग रूम में आना बन्द कर दिया और कई दिन खाना अपने क्वार्टर में ही मंगवाती रही। जॉन और पीटर भी अलग-अलग समय पर आते, जिससे बहुत कम उनमें मुलाकात हो पाती। नानावती अब पहले से भी सहमी हुई आती और जल्दी-जल्दी खाना खाकर चली जाती। फ़ादर फ़िशर ने उसे पाल वाला क्वार्टर दे दिया था, इसलिए वह अपने को अपराधिनी-सी महसूस करती थी। जॉन ने उसके बारे में अपनी राय फिर बदल ली थी।

मगर धीरे-धीरे स्थिति फिर पुराने स्तर पर आने लगी। बैचलर्स डाइनिंग रूम में फिर कहकहे और बहस-मुबाहिसे सुनाई देने लगे, जब एक रात सुना गया कि आंट सैली को भी नोटिस मिल गया है कि वह चौबीस घंटे के अन्दर-अन्दर क्वार्टर खाली करके चली जाए।

"सैली को ?" जॉन के ओंठ खुले ही रह गए। "किस बात पर ?"

"बात का पता नहीं।" पीटर सूप में चम्मच हिलाता रहा।

जॉन का चेहरा गम्भीर हो गया। वह मक्खन की टिकिया खोलता हुआ बोला, "मुझे लगता है कि इसके बाद अब मेरी बारी आएगी। मुझे पता है कि उसकी आंखों में कौन-कौन खटकता है। सैली का अपराध यह

था कि वह रोज़ उसकी हाज़िरी नहीं देती थी और न ही वह···" और वह नानावती की ओर देखकर चुप कर गया। पीटर कुछ कहने लगा, मगर बाहर से हकीम को आते देखकर चुपचाप नेपकिन से ओंठ पोंछने लगा।

हकीम के आने पर कई क्षण चुप्पी रही। किरपू हकीम के आगे प्लेट और छुरी-कांटे रख गया।

"तुम्हारे क्वार्टर में नये पर्दे बहुत अच्छे लगे हैं," जॉन हकीम को लक्षित करके बोला।

"तुम्हें पसन्द हैं?"

"बहुत।"

"शुक्रिया!"

"मेरा ख्याल है चॉप्स में नमक ज्यादा है।"

"अच्छा?"

"लेकिन पुडिंग अच्छा है।"

खाना खाकर जॉन और पीटर लॉन में टहलने लगे। आंट सैली के क्वार्टर को जाने वाले मोड़ के पास रुककर जॉन ने पूछा, "सैली से मिलने चलते हो?"

"च-लो।"

"उस हरामी ने देख लिया तो···?"

"तो कल सुबह चलें?"

"हां, इस वक्त काफी देर भी हो गई है।"

"बेचारी सैली!"

"इस पादरी जैसा ज़ालिम आदमी मैंने कहीं नहीं देखा। फौज में बड़े-बड़े सख्त अफसर देखे हैं मगर ऐसा आदमी नहीं देखा।"

पीटर जंगले के पास घास पर बैठ गया।

"मुझे फिर से फौज की ज़िन्दगी मिल जाए तो मैं एक दिन भी यहां न रहूं···"

और घास पर बैठकर जॉन पीटर को अपनी फौज की ज़िन्दगी के वही

किस्से सुनाने लगा जो वह अनेक बार सुना चुका था।

"पूरी-पूरी बोतल ए! रोज़ रात को रम की एक पूरी बोतल मैं पी जाता था। और मेरा एक साथी था जो पास के गांव से दो लड़कियों को ले आया करता था।...कभी-कभी हम रात को निकलकर उनके गांव चले जाते थे। अफसर लोग देखते थे मगर कुछ कह नहीं सकते थे। वे खुद भी तो यही कुछ करते थे। वह ज़िन्दगी ज़िन्दगी थी। यह भी कोई ज़िन्दगी है, ए?"

मगर पीटर उसकी बात न सुनकर बिना आवाज़ पैदा किए, मुंह ही मुंह एक गीत गुनगुना रहा था।

"वैसे दिन फिर से मिल जाएं तो मुझे और क्या चाहिए, ए?"

ऊपर देवदार की छतरियां हिल रही थीं। हवा से जंगल में सांय-सांय की आवाज़ सुनाई दे रही थी। होस्टल की ओर से आने वाली पगडंडी पर पैरों की आवाज़ सुनकर जॉन सहसा चौंक गया।

"कोई आ रहा है, ए?"

पीटर सिर उठाकर जंगले से नीचे देखने लगा।

पैरों की आहट के साथ सीटी की आवाज़ ऊपर आती गई।

"बैरो है!"

"यह भी एक हरामज़ादा है।"

पीटर ने उसका हाथ दबा दिया।

"अभी क्वार्टर में नहीं गए टैफ़ी?" बैरो ने अन्धेरे से निकलकर आते हुए पूछा।

"नहीं, ज़रा हवा ले रहे हैं।"

"आज हवा काफी ठण्डी है। पन्द्रह-बीस दिन में बर्फ पड़ने लगेगी।"

जॉन जंगले का सहारा लेकर उठ खड़ा हुआ।

"अच्छा, गुड नाइट पीटर! गुड नाइट बैरो!"

"गुड नाइट।"

कुछ रास्ता पीटर और बैरो साथ-साथ चलते रहे। बैरो चलते-चलते

बोला, "जॉन अब काफी सठिया गया है, क्यों ? इसे अब रिटायर हो जाना चाहिए।"

"हां-आं !" पीटर के शरीर में एक सिरहन भर गई।

"मगर यह तो यहीं अपनी कब्र बनाएगा, क्यों ?"

पीटर ने मुंह तक आई हुई गाली ओंठों में दबा ली।

बैरों का क्वार्टर आ गया।

"अच्छा, गुड नाइट।"

"गुड नाइट।"

सुबह नाश्ते के समय जॉन ने पीटर से पूछा, "सैली चली गई, ए ?"

"पता नहीं," पीटर बोला, "मेरा ख्याल है अभी नहीं गई।"

"वह आ रही है !" नानावती नेपकिन से मुंह पोंछकर उसे हाथ में मसलने लगी। जॉन और पीटर की आंखें झुक गईं।

आंट सैली का रिक्शा डाइनिंग रूम के दरवाज़े के पास आकर खड़ा हो गया। वह कन्धे पर झोला लटकाए हुए उसमें से उतरकर डाइनिंग रूम में आ गई।

"गुड मॉर्निंग एवरी बडी !" उसने दहलीज़ लांघते ही हाथ हिलाया।

"गुड मॉर्निंग सैली !" जॉन ने भूरी आंखें उसके चेहरे पर स्थिर करके भारी आवाज़ में कहा। जो वह मुंह से नहीं कह सका, वह उसने अपनी गहरी दृष्टि से कह देने की चेष्टा की।

"बस आज ही जा रही हो ?" नानावती ने डरे-सहमे हुए स्वर में पूछा और एक बार दायें-बायें देख लिया। आंट सैली ने आंखें झपकते हुए मुस्कराकर सिर हिलाया।

"मैं सुबह मिलने आ रहा था," पीटर बोला। "मगर तैयार होते-होते देर हो गई। मेरा ख्याल था कि तुम शाम को जा रही हो…"

आंट सैली ने धीरे से उसका कन्धा थपथपा दिया और उसी तरह मुस्कराते हुए कहा, "मैं जानती हूं मेरे बच्चे। मैं चाहती हूं कि तुम खुश रहो।"

"आंटी, कभी-कभार खत लिख दिया करना," पीटर ने उसका मुरझाया हुआ कोमल हाथ अपने मज़बूत हाथ में लेकर हिलाया। आंट सैली की आंखें डबडबा आईं और उसने उनपर रूमाल रख लिया।

"अच्छा गुड बाई!" कहकर वह जल्दी से दहलीज़ पार करके रिक्शा की ओर चली गई।

"गुड बाई सैली!" जॉन ने पीछे से कहा।

"गुड बाई आंटी!"

"गुड बाई!"

आंट सैली ने रिक्शा में बैठकर उनकी ओर हाथ हिलाया। मज़दूर रिक्शा खींचने लगे।

कुछ देर बाद नानावती ने कहा, "क़िरपू, एक बटर स्लाइस।"

जॉन पीछे की ओर देखकर बोला, "मुझे चाय का थोड़ा गर्म पानी और दे दो।"

और पीटर जैम के डिब्बे में से जैम निकालने लगा।

जिस दिन अनिता आई, उसी शाम से आकाश में सलेटी बादल घिरने लगे। रात को हल्की-हल्की बरफ भी पड़ गई। अगले दिन शाम तक बादल और गहरे हो गए। पीटर खेतानी गांव तक घूमकर वापस आ रहा था, जब अनिता उसे ऊपर की पगडंडी पर टहलती दिखाई दी। वह उस ठण्ड में भी साड़ी के ऊपर सिर्फ एक शाल लिए थी। पीटर को देखकर वह मुस्कराई। पीटर ने उसकी मुस्कराहट का उत्तर अभिवादन से दिया।

"घूमने जा रही हो?" उसने पूछा।

"नहीं, यूं ही ज़रा टहलने के लिए निकल आई थी।"

"तुम्हें ठण्ड नहीं लग रही?"

"ठण्ड तो है ही, मगर क्वार्टर में बन्द होकर बैठने को मन नहीं हुआ।" उसने शाल से अपनी बांहें भी ढांप लीं।

"तुम तो ऐसे घूम रही हो जैसे मई का महीना हो।"

"मेरे लिए मई और नवम्बर दोनों बराबर हैं। मेरे पास ऊनी कपड़े

हैं ही नहीं।" वह फिसलन पर से संभलती हुई पगडंडी से उतरकर उसके बराबर आ गई।

"ऊनी कपड़े तो तुमने पादरी के डिनर की रात के लिए संभालकर रख रखे होंगे। तब तक सरदी में बीमार न पड़ जाना।" उसने मज़ाक के अन्दाज़ में अपना निचला होंठ सिकोड़ लिया।

"सच, मेरे पास इस शाल के सिवा और कोई ऊनी कपड़ा है ही नहीं," अनिता उसके बराबर चलती हुई बोली, "सच पूछो तो यह भी प्रेज़ेंट का है। हमें उधर गरम कपड़ों की ज़रूरत पड़ती ही नहीं।"

"तो परसों तक एक बढ़िया-सा कोट सिला लो। परसों फ़ादर का डिनर है।"

"परसों तक?···ओह!" और वह मीठी-सी हंसी हंस दी।

"क्यों? यहां एक दिन में अच्छे से अच्छा कोट सिल जाएगा।"

"मेरे पास इतने पैसे होते तो मैं यहां नौकरी करने क्यों आती? तुम्हें पता है मैं नौ सौ मील से यहां आई हूं···अ···"

"पीटर—या सिर्फ़ ब्रिकी···"

"मैं अपने घर में अकेली ही कमाने वाली हूं, मिस्टर पीटर। मेरी मां पहले बटुवे सिया करती थी, पर अब उसकी आंखें बहुत कमज़ोर हो गई हैं। मेरा छोटा भाई अभी पढ़ता है। उसके एम० एस-सी० करने तक मुझे नौकरी करनी है।"

पीटर ने रुककर एक सिगरेट सुलगा लिया। बरफ के हल्के-हल्के गाले पड़ने लगे थे। उसने आकाश की ओर देखा। बादल बहुत गहरे थे।

"आज काफी बरफ पड़ेगी," उसने कोट के कॉलर ऊंचे करते हुए कहा, "चलो तुम्हें तुम्हारे क्वार्टर तक छोड़ आऊं।···तुम सी कॉटेज में हो न?"

"हां।···चलो मैं तुम्हें चाय की प्याली बनाकर पिलाऊंगी।"

"इस मौसम में चाय मिल जाए, तो और क्या चाहिए?"

वे सी कॉटेज को जाने वाली पगडंडी पर उतरने लगे। कुहरा घना हो जाने से रास्ता दस कदम आगे तक ही दिखाई दे रहा था। अनिता एक

जगह पत्थर से ठोकर खा गई।

"चोट लगी ?"

"नहीं।"

"मेरे कंधे का सहारा ले लो।"

अनिता ने बराबर आकर उसके कंधे का सहारा ले लिया। जब वे सी कॉटेज के बरामदे में पहुंचे तो बरफ के बड़े-बड़े गाले गिरने लगे थे। घाटी में जहां तक आंख जाती थी—बादल ही बादल भरे थे। एक बिल्ली दरवाज़े से सटकर कांप रही थी। अनिता ने दरवाज़ा खोला तो वह म्याऊं करके दरवाज़े के अन्दर घुस गई।

दरवाज़ा खुलने पर पीटर ने उसके सामान पर एक सरसरी नज़र डाली। स्कूल के फर्नीचर के अतिरिक्त उसे एक टीन का ट्रंक और दो-चार कपड़े ही दिखाई दिए। मेज़ पर एक सस्ता टेबल लैम्प पड़ा था और उसके पास एक युवक का फोटोग्राफ रखा था। पीटर चारपाई पर बैठ गया। अनिता स्टोव जलाने लगी।

चारपाई पर एक पुस्तक और एक आधा लिखा हुआ पत्र पड़ा था। पीटर ने पत्र ज़रा हटाकर रख दिया और पुस्ताक उठा ली। पुस्तक पत्र लिखने की कला के सम्बन्ध में थी और उसमें हर तरह के पत्र दिए हुए थे। पीटर उसके पन्ने पलटने लगा।

अनिता ने स्टोव जलाकर केतली चढ़ा दी। फिर उसने बाहर देखकर कहा, "बरफ पहले से तेज़ पड़ने लगी है।"

पीटर ने देखा कि बरामदे के बाहर ज़मीन पर सफेदी की हल्की तह बिछ गई। उसने सिगरेट का टुकड़ा बाहर फेंक दिया, जो धुन्ध में जाते ही बुझ गया।

"आज रात-भर बरफ पड़ती रहेगी," उसने कहा।

अनिता स्टोव पर हाथ सेंकने लगी।

बाहर बरामदे में पैरों की आहट सुनकर पीटर बाहर निकल आया। जॉन भारी-भारी क़दमों से चलता आ रहा था।

"ए पीटर !"

"हलो टैफ़ी !...इस वक्त बर्फ में कैसे निकल पड़े ?"

"तुम्हारे क्वार्टर में गया था। तुम वहां नहीं मिले तो सोचा, शायद यहां मिल जाओ।" और वह मुस्करा दिया।

"वैसे घूमने के लिए मौसम भी अच्छा है !" पीटर ने कहा।

वे दोनों कमरे में आ गए। अनिता प्यालियां धो रही थी। एक प्याली उसके हाथ से गिरकर टूट गई।

"ओह !"

"प्याली टूट गई ?"

"हां, दो थीं, उनमें से भी एक टूट गई।"

"कोई बात नहीं। सॉसर तो हैं। उनसे प्यालियों का काम चल जाएगा।"

पीटर फिर चारपाई पर बैठ गया। जॉन मेज़ पर रखे फोटोग्राफ के पास चला गया।

"फ़िआंसे—ए ?"

अनिता ने मुस्कराकर सिर हिलाया।

"यह चिट्ठी भी उसीको लिखी जा रही थी ?"

जॉन ने चारपाई पर रखे पत्र की ओर संकेत किया। पीटर पुस्तक का वह पृष्ठ पढ़ने लगा, जिसपर से वह चिट्ठी नकल की जा रही थी।

जॉन स्टोव के पास जा खड़ा हुआ और अनिता के शाल की प्रशंसा करने लगा।

चाय हो गई तो अनिता ने प्याली बनाकर जॉन को दे दी। अपने और पीटर के लिए सॉसर में चाय डालती हुई बोली, "हमारे घर में कुल दो ही प्यालियां थीं। वही मैं उठा लाई थी। आते ही एक टूट गई।"

जॉन और पीटर ने एक-दूसरे की ओर देखकर आंखें हटा लीं।

"यह सी कॉटेज है तो अच्छी, मगर ज़रा दूर पड़ जाती है," पीटर दोनों हाथों में सॉसर संभालता हुआ बोला। "तुम पादरी से कहो कि तुम्हें

डी या ई कॉटेज में जगह दे दें। वे दोनों खाली पड़ी हैं। उनमें दो-दो बड़े कमरे हैं।"

"अच्छा ?" अनिता बोली। "वैसे मेरे लिए तो यही कमरा बहुत बड़ा है। घर में हमारे पास इससे भी छोटा एक कमरा है जिसमें हम तीन जने रहते हैं।...उसमें से भी आधा कमरा मेरे भाई ने ले रखा है और आधे कमरे में हम मां-बेटी गुज़ारा करती हैं। अब मैं आ गई हूं तो मां को जगह की कुछ सहूलियत हो गई होगी।...मैं अपनी मां को बहुत प्यार करती हूं। पहला वेतन मिलने पर मैं उसके लिए कुछ अच्छे-अच्छे कपड़े भेजना चाहती हूं। उसके पास अच्छे कपड़े नहीं हैं।"

पीटर और जॉन की आंखें पल-भर मिली रहीं। जॉन का निचला ओंठ थोड़ा सिकुड़ गया।

"चाय बहुत अच्छी है !"

"खूब गरम है और फ्लेवर भी बहुत अच्छा है।"

"रोज़ बरफ पड़े तो मैं रोज़ यहां आकर चाय पिया करूंगा।"

पीटर के सॉसर से चाय छलक गई।

"सॉरी !"

बरफ और कुहरे के कारण बाहर बिलकुल अंधेरा हो गया था। बरफ के गाले दूध-फेन की तरह निःशब्द गिर रहे थे। जॉन और पीटर अनिता के क्वार्टर से निकलकर ऊपर की ओर चले तो पगडंडी पर दो-दो इंच बरफ इकट्ठी हो चुकी थी। अंधेरे में ठीक से रास्ता दिखाई नहीं दे रहा था, इसलिए जॉन ने पीटर की बांह पकड़ ली।

"अच्छी लड़की है, ए ?"

"बहुत सीधी है।"

"मुझे डर है कि यह भी नानावती की तरह..."

"रहने दो, उसके साथ इसका मुकाबिला करते हो ?"

"वह आई थी तो वह भी ऐसी ही थी..."

"मैं इसे इन लोगों के बारे में सब कुछ बता दूंगा।"

जॉन को थोड़ी खांसी आ गई। वे कुछ देर खामोश चलते रहे। उनके पैरों के नीचे कच्ची बरफ का कचर-कचर शब्द ही सुनाई देता रहा।

कुछ फासले से टार्च की रोशनी आकर उनकी आंखों से टकराई। पल-भर के लिए उनकी आंखें चुंधियाई रहीं। फिर उन्होंने ऊपर से उतरती हुई आकृति को देखा।

"गुड ईवनिंग बैरो!"

"गुड ईवनिंग टैफ़ी! किधर से घूमकर आ रहे हो?"

"यूं ही बरफ पड़ती देखकर थोड़ी दूर निकल गए थे।"

"बरफ में घूमना सेहत के लिए अच्छा है!"

पीटर ने जॉन की उंगली दबा दी।

"तुम भी सेहत बनाने के लिए निकले हो?"

इस बार जॉन ने पीटर की उंगली दबाई।

"हां, मौसम अच्छा है, मैं भी ज़रा घूम लूं।"

"अच्छा, गुड नाइट!"

"गुड नाइट!"

टार्च की रोशनी काफी नीचे पहुंच गई तो जॉन पैर से रास्ता टटोल-कर चलता हुआ बोला, "यह पादरी का खुफिया है खुफिया। मैं इस हरामी की रग-रग पहचानता हूं।"

पीटर खामोश चलता रहा।

सुबह जिस समय पीटर की आंख खुली, उसने देखा कि वह जॉन के क्वार्टर में एक आराम कुरसी पर पड़ा है...वहीं उसपर दो कम्बल डाल दिए गए हैं और सामने रम की खाली बोतल रखी है। वह उठा तो उसकी गरदन दर्द कर रही थी। उसने खिड़की के पास जाकर देखा कि जॉन चाय का फ्लास्क लिए डाइनिंग रूम की तरफ से आ रहा है। वह ठण्डी सलाखों को पकड़े हुए दूर तक फैली हुई बरफ को देखता रहा।

जॉन कमरे में आ गया और भारी कदमों से तख्ते पर शब्द करता हुआ

पीटर के निकट आ खड़ा हुआ।

"कुछ सुना, ए?"

पीटर ने उसकी ओर देखा।

"रात को पादरी ने उसे अपने घर पर बुलाया था...।"

"किसे, अनिता को?"

जॉन ने सिर हिलाया। उसकी आंखें क्षण-भर पीटर की आंखों से मिली रहीं। पीटर गम्भीर होकर दीवार को देखता रहा।

"टैफ़ी, मैं उससे कहूंगा कि वह यहां से नौकरी छोड़कर चली जाए। उसे नहीं पता कि यहां वह किन जानवरों के बीच आ गई है!"

जॉन फ्लास्क से प्यालियों में चाय उंडेलने लगा।

"उसमें खुददारी हो तो उसे आप ही चली जाना चाहिए," वह बोला। "किसीके कहने से क्या होगा? कुछ नहीं।"

"हो या न हो, मगर मैं उससे कहूंगा ज़रूर..."

"तुम पागल हुए हो? हमें दूसरों से मतलब? वह अनजान बच्ची तो है नहीं।"

पीटर कुछ न कहकर दीवार को देखता हुआ चाय के घूंट भरने लगा।

"अब जल्दी से तैयार हो जाओ, गिरजे का वक्त हो रहा है!"

पीटर ने दो घूंट में चाय की प्याली खाली करके रख दी।

"मैं गिरजे नहीं जाऊंगा।"

जॉन कुरसी की बांह पर बैठ गया।

"आज तुम्हारी सलाह क्या है?"

"कुछ नहीं, मैं गिरजे नहीं जाऊंगा।"

जॉन मुंह ही मुंह में बड़बड़ाकर ठण्डी चाय की चुस्कियां लेता रहा।

दो दिन की बरफबारी के बाद फ़ादर फ़िशर के डिनर की रात को मौसम खुल गया। डिनर से पहले घण्टा-भर सब लोग 'म्यूज़िकल चेयर्स' का खेल खेलते रहे। उस खेल में मणि नानावती को पहला पुरस्कार मिला। पुरस्कार मिलने पर उससे जो-जो मज़ाक किए गए, उनसे उसका चेहरा

इतना लाल हो गया कि वह थोड़ी देर के लिए कमरे से बाहर भाग गई। मिसेज़ मर्फ़ी उस दिन बहुत सुन्दर हैट और रिबन लगाकर आई थी; उसकी बहुत प्रशंसा की गई। डिनर के बाद लोग काफी देर तक आग के पास खड़े बातें करते रहे। पादरी ने सबसे नई मेट्रन का परिचय कराया। अनिता शाल में सिकुड़ी हुई सबके अभिवादन का उत्तर मुसकराकर देती रही।

एटकिन्सन मिसेज़ मर्फ़ी को आंख से इशारा करके मुसकराया।

हिचकॉक अपनी मुस्कराहट व्यक्त न होने देने के लिए सिगार के लम्बे-लम्बे कश खींचने लगा। जॉन उधर से नज़र हटाकर हिचकॉक से बात करने लगा।

"तुम्हें तली हुई मछली अच्छी लगी ?...मुझे तो ज़रा अच्छी नहीं लगी।"

"मुझे मछली हर तरह की अच्छी लगती है, कच्ची हो या तली हुई... हां, मछली हो।"

"जॉन ने मुंह बिचकाया।

"रम की बोतल साथ हो तो भी तुम्हें अच्छी नहीं लगती ?"

जॉन दांत खोलकर मुस्कराया और सिर हिलाने लगा।

मजलिस बरखास्त होने पर जब सब बाहर निकले तो हिचकॉक ने धीमे स्वर में जॉन से पूछा, "क्या बात है, आज पीटर दिखाई नहीं दिया...?"

जॉन उसका हाथ दबाकर उसे ज़रा दूर ले गया और दबे हुए स्वर में बोला, "उसे पादरी ने जवाब दे दिया है।"

"पीटर को भी ?"

जॉन ने सिर हिलाया।

"वह कल सुबह यहां से चला जाएगा।"

"क्या कोई ख़ास बात हुई थी ?"

जॉन ने उसका हाथ दबा दिया। पादरी और बैरो के साथ-साथ अनिता सिर झुकाए हुए शाल में छिपी-सिमटी बरामदे से निकलकर चली गई।

जॉन की भूरी आखें कई गज़ तक उनका पीछा करती रहीं।

"यह आप भी गर्म पानी से नहाता है या नहीं ?"

"क्यों ?" बात हिचकॉक की समझ में नहीं आई।

"इसने डॉली को गर्म पानी से नहलाया था न···!"

हिचकॉक हो हो करके हंस दिया। बरामदे में से गुज़रते हुए हकीम ने आवाज़ दी, "खूब कहकहे लग रहे हैं ?"

"मैं तली हुई मछली हज़म कर रहा हूं," हिचकॉक ने उत्तर दिया, और ऊंचे स्वर में जॉन को बतलाने लगा कि बगैर कांटे की मासेर मछली कितनी ताकतवर होती है।

सुबह जॉन, अनिता, नानावती और हकीम बैचलर्स डाइनिंग रूम में नाश्ता कर रहे थे, जब पीटर का रिक्शा दरवाज़े के पास से निकलकर चला गया। पीटर रिक्शे में सीधा बैठा रहा। न उसे किसीने अभिवादन किया और न ही वह किसीको अभिवादन करने के लिए मुड़ा। अनिता की झुकी हुई आंखें और झुक गईं···जॉन ऐसे गर्दन किए बैठा रहा जैसे उस तरफ उसका ध्यान ही न हो। बैचलर्स डाइनिंग रूम में कई क्षण खामोशी रही।

सहसा पादरी को खिड़की के पास से गुज़रते देखकर सब लोग अपनी-अपनी सीट से आधा-आधा उठ गए।

"गुड मॉर्निंग फ़ादर !"

"गुड मॉर्निंग माई सन्स।"

"कल रात का डिनर बहुत ही अच्छा रहा," हकीम ने चेहरे पर विनयपूर्ण मुस्कराहट लाकर कहा।

"सब तुम्हीं लोगों की वजह से है।"

"मैं तो कहता हूं कि ऐसे डिनर रोज़ हुआ करें···"

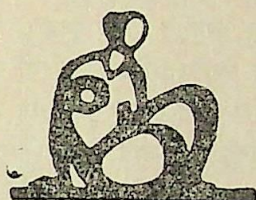
पादरी आगे निकल गया तो भी कुछ देर हकीम के चेहरे पर वह मुस्कराहट बनी रही।

"मेरे लिए उबला हुआ अंडा अभी तक क्यों नहीं आया ?" सहसा जॉन क्रोध के साथ बड़बड़ाया। अनिता स्लाइस पर मक्खन लगाती हुई

सिहर गई । किरपू ने एक प्लेट में उबला हुआ अंडा लाकर जॉन के पास रख दिया ।

"छीलकर लाओ !" जॉन ने उसी तरह कहा और प्लेट को हाथ मार दिया । प्लेट अंडे समेत नीचे जा गिरी और टूट गई ।

उधर गिरजे की घंटियां बजने लगीं···डिग डांग ! डिग डांग ! डिग डांग !



# मलबे का मालिक

पूरे साढ़े सात साल के बाद वे लोग लाहौर से अमृतसर आए थे। हाकी का मैच देखने का तो बहाना ही था, उन्हें ज्यादा चाव उन घरों और बाज़ारों को फिर से देखने का था, जो साढ़े सात साल पहले उनके लिए पराये हो गए थे। हर सड़क पर मुसलमानों की कोई न कोई टोली घूमती नज़र आ जाती थी। उनकी आंखें इस आग्रह के साथ वहां की हर चीज़ को देख रही थीं, जैसे वह शहर साधारण शहर न होकर एक खास आकर्षण-केन्द्र हो।

तंग बाज़ारों में से गुज़रते हुए वे एक-दूसरे को पुरानी चीज़ों की याद दिला रहे थे···देख, फ़तहदीना, मिसरी बाज़ार में अब मिसरी की दुकानें पहले से कितनी कम रह गई हैं!···उस नुक्कड़ पर भठियारिन की भट्ठी थी, जहां अब यह पानवाला बैठा है।···यह नमकमण्डी देख लो, खान साहब! यहां की एक-एक लालाइन वह नमकीन होती है कि बस···

बहुत दिनों के बाद बाज़ारों में तुर्रेदार पगड़ियां और लाल तुर्की टोपियां दिखाई दे रही थीं। लाहौर से आए हुए मुसलमानों में काफी संख्या ऐसे लोगों की थी, जिन्हें विभाजन के समय मजबूर होकर अमृतसर छोड़कर जाना पड़ा था। साढ़े सात साल में आए अनिवार्य परिवर्तनों को देखकर कहीं उनकी आंखों में हैरानी भर जाती और कहीं अफसोस घिर आता—वल्लाह। कटरा जयमलसिंह इतना चौड़ा कैसे हो गया? क्या इस तरफ के सबके सब मकान जल गए? ···यहां हकीम आसिफ़अली की दुकान थी न? अब यहां एक मोची ने कब्ज़ा कर रखा है!

और कहीं-कहीं ऐसे भी वाक्य सुनाई दे जाते—वली, यह मस्जिद ज्यों की त्यों खड़ी है ? इन लोगों ने इसका गुरुद्वारा नहीं बना दिया ?

जिस रास्ते से भी पाकिस्तानियों की टोली गुज़रती, शहर के लोग उत्सुकतापूर्वक उसकी ओर देखते रहते। कुछ लोग अब भी मुसलमानों को आते देखकर शंकित-से रास्ते से हट जाते थे, जबकि दूसरे आगे बढ़कर उनसे बगलगीर होने लगते थे। ज़्यादातर वे आगन्तुकों से ऐसे-ऐसे सवाल पूछते थे कि आजकल लाहौर का क्या हाल है ? अनारकली में अब पहले जितनी रौनक होती है या नहीं ? सुना है, शाहालमीगेट का बाज़ार पूरा नया बना है ? कृष्णनगर में तो कोई खास तबदीली नहीं आई ? वहां का रिश्वतपुरा क्या वाकई रिश्वत के पैसे से बना है ? कहते हैं, पाकिस्तान में अब बुर्का बिलकुल उड़ गया है, यह ठीक है ?···इन सवालों में इतनी आत्मीयता झलकती थी कि लगता था कि लाहौर एक शहर नहीं, हज़ारों लोगों का सगा-सम्बन्धी है, जिसके हालात जानने के लिए वे उत्सुक हैं। लाहौर से आए हुए लोग उस दिन शहर-भर के मेहमान थे, जिनसे मिलकर और बातें करके लोगों को खामखाह खुशी का अनुभव होता था।

बाज़ार बांसां अमृतसर का एक उपेक्षित-सा बाज़ार है, जो विभाजनों से पहले गरीब मुसलमानों की बस्ती थी। वहां ज़्यादातर बांस और शहतीर की ही दुकानें थीं, जो सबकी सब एक ही आग में जल गई थीं। बाज़ार बांसां की आग अमृतसर की सबसे भयानक आग थी, जिससे कुछ देर के लिए तो सारे शहर के जल जाने का अंदेशा पैदा हो गया था। बाज़ार बांसां के आसपास के कई मुहल्लों को तो उस आग ने अपनी लपेट में ले ही लिया था। खैर, किसी तरह वह आग काबु में आ तो गई, पर उसमें मुसलमानों के एक-एक घर के साथ हिन्दुओं के भी चार-चार, छः-छः घर जलकर राख हो गए। अब साढ़े सात साल में उनमें से कई इमारतें तो फिर से खड़ी हो गई थीं, मगर जगह-जगह मलबे के ढेर अब भी मौजूद थे। नई इमारतों के बीच-बीच में मलबे के ढेर अजीब ही वातावरण प्रस्तुत करते थे।

बाज़ार बांसां में उस दिन भी चहल-पहल नहीं थी, क्योंकि उस बाज़ार

के ज़्यादातर बाशिन्दे तो अपने मकानों के साथ ही शहीद हो गए थे और जो बचकर चले गए थे, उनमें शायद लौटकर आने की हिम्मत बाकी नहीं रही थी। सिर्फ एक दुबला-पतला बुड्ढा मुसलमान ही उस वीरान बाज़ार में आया और वहां की नई और जली हुई इमारतों को देखकर जैसे भूल-भुलैया में पड़ गया। बायें हाथ को जाने वाली गली के पास पहुंचकर उसके कदम अन्दर मुड़ने को हुए, मगर फिर वह हिचकिचाकर वहां बाहर ही खड़ा रह गया, जैसे उसे निश्चय नहीं हुआ कि वह वही गली है या नहीं, जिसमें वह जाना चाहता है। गली में एक तरफ कुछ बच्चे कीड़ी-काड़ा खेल रहे थे और कुछ अन्तर पर दो स्त्रियां ऊंची आवाज़ में चीखती हुई एक-दूसरी को गालियां दे रही थीं।

"सब कुछ बदल गया, मगर बोलियां नहीं बदलीं!" बुड्ढे मुसलमान ने धीमे स्वर में अपने से कहा और छड़ी का सहारा लिए खड़ा रहा। उसके घुटने पाजामे से बाहर को निकल रहे थे और घुटनों के थोड़ा ऊपर ही उसकी शेरवानी में तीन-चार पैवन्द लगे थे। गली से एक बच्चा रोता हुआ बाहर को आ रहा था। उसने उसे पुचकारकर पुकारा, "इधर आ, बेटे, आ इधर! देख, तुझे चिज्जी देंगे, आ!" और वह अपनी जेब में हाथ डालकर उसे देने के लिए कोई चीज़ ढूंढ़ने लगा। बच्चा क्षण-भर के लिए चुप कर गया, लेकिन फिर उसने ओंठ बिसोर लिए और रोने लगा। एक सोलह-सत्रह बरस की लड़की गली के अन्दर से दौड़ती हुई आई और बच्चे की बांह पकड़कर उसे घसीटती हुई गली में ले चली। बच्चा रोने के साथ-साथ अपनी बांह छुड़ाने के लिए मचलने लगा। लड़की ने उसे बांहों में उठाकर अपने साथ चिपका लिया और उसका मुंह चूमती हुई बोली, "चुप कर, मेरा वीर! रोएगा तो तुझे वह मुसलमान पकड़कर ले जाएगा, मैं वारी जाऊं, चुप कर!"

बुड्ढे मुसलमान ने बच्चे को देने के लिए जो पैसा निकाला था, वह वापस जेब में रख लिया। सिर से टोपी उतारकर उसने वहां थोड़ा खुजलाया और टोपी बगल में दबा ली। उसका गला खुश्क हो रहा था और घुटने

ज़रा-ज़रा कांप रहे थे। उसने गली के बाहर की बन्द दुकान के तख्ते का सहारा ले लिया और टोपी फिर से सिर पर लगा ली। गली के सामने जहां पहले ऊंचे-ऊंचे शहतीर रखे रहते थे, वहां अब एक तिमंज़िला मकान खड़ा था। सामने बिजली के तार पर दो मोटी-मोटी चीलें बिलकुल जड़ होकर बैठी थीं। बिजली के खंभे के पास थोड़ी धूप थी। वह कई पल धूप में उड़ते हुए ज़र्रों को देखता रहा। फिर उसके मुंह से निकला, "या मालिक !"

एक नवयुवक चाबियों का गुच्छा घुमाता हुआ गली की ओर आया और बुड्ढे को वहां खड़े देखकर उसने रुककर पूछा, "कहिए, मियां जी, यहां किस तरह खड़े हैं ?"

बुड्ढे मुसलमान की छाती और बांहों में हल्की-सी कंपकंपी हुई और उसने ओंठों पर ज़बान फेरकर नवयुवक को ध्यान से देखते हुए पूछा, "बेटे, तेरा नाम मनोरी नहीं है ?"

नवयुवक ने चाबियों का गुच्छा हिलाना बन्द करके मुट्ठी में ले लिया और आश्चर्य के साथ पूछा, "आपको मेरा नाम कैसे पता है ?"

"साढ़े सात साल पहले तू बेटे, इतना-सा था," कहकर बुड्ढे ने मुस-कराने की कोशिश की।

"आप आज पाकिस्तान से आए हैं ?" मनोरी ने पूछा।

"हां, मगर पहले हम इसी गली में रहते थे," बुड्ढे ने कहा, "मेरा लड़का चिराग़दीन तुम लोगों का दर्ज़ी था। तकसीम से छः महीने पहले हम लोगों ने यहां अपना नया मकान बनाया था।"

"ओ ग़नी मियां !" मनोरी ने पहचानकर कहा।

"हां, बेटे, मैं तुम लोगों का ग़नी मियां हूं ! चिराग़ और उसके बीवी-बच्चे तो नहीं मिल सकते, मगर मैंने कहा कि एक बार मकान की सूरत ही देख लूं !" और उसने टोपी उतारकर सिर पर हाथ फेरते हुए आंसुओं को बहने से रोक लिया।

"आप तो शायद काफी पहले ही यहां से चले गए थे," मनोरी ने स्वर में संवेदना लाकर कहा।

"हां, बेटे, मेरी बदबख्ती थी कि पहले अकेला निकलकर चला गया। यहां रहता, तो उनके साथ मैं भी···" और कहते-कहते उसे अहसास हो आया कि उसे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए। उसने बात मुंह में रोक ली, मगर आंख में आए हुए आंसुओं को बह जाने दिया।

"छोड़िए, ग़नी साहब, अब बीती बातों को सोचने में क्या रखा है?" मनोरी ने ग़नी की बांह पकड़कर कहा, "आइए, आपको आपका घर दिखा दूं?"

गली में खबर इस रूप में फैली थी कि गली के बाहर एक मुसलमान खड़ा है, जो रामदासी के लड़के को उठाने जा रहा था···उसकी बहन उसे पकड़कर घसीट लाई, नहीं तो वह मुसलमान उसे ले गया होता। यह खबर पाते ही जो स्त्रियां गली में पीढ़े बिछाकर बैठी थीं, वे अपने-अपने पीढ़े उठाकर घरों के अन्दर चली गईं। गली में खेलते हुए बच्चों को भी उन स्त्रियों ने पुकार-पुकारकर घरों में बुला लिया। मनोरी जब ग़नी को लेकर गली में आया, तो गली में एक फेरीवाला रह गया था या कुएं के साथ उगे हुए पीपल के नीचे रक्खा पहलवान बिखरकर सोया था। घरों की खिड़कियों में से और किवाड़ों के पीछे से अलबत्ता कई चेहरे झांक रहे थे। ग़नी को गली में आते देखकर उनमें हल्की-हल्की चेहमेगोइयां शुरू हो गईं। दाढ़ी के सब बाल सफेद हो जाने के बावजूद लोगों ने चिराग़दीन के बाप अब्दुलग़नी को पहचान लिया था।

"वह आपका मकान था," मनोरी ने दूर से एक मलबे की ओर संकेत किया। ग़नी पल-भर के लिए ठिठककर फटी-फटी आंखों से उसकी ओर देखता रहा। चिराग़ और उसके बीवी-बच्चों की मौत को वह काफी अर्सा पहले स्वीकार कर चुका था, मगर अपने नये मकान को इस रूप में देखकर उसे जो झुनझुनी हुई, उसके लिए वह तैयार नहीं था। उसकी ज़बान पहले से ज़्यादा खुश्क हो गई और घुटने भी और ज़्यादा कांपने लगे।

"वह मलबा?" उसने अविश्वास के स्वर में पूछा।

मनोरी ने उसके चेहरे का बदला हुआ रंग देखा। उसने उसकी बांह को

और सहारा देकर ठहरे हुए स्वर में उत्तर दिया, "आपका मकान उन्हीं दिनों जल गया था।"

ग़नी छड़ी का सहारा लेता हुआ किसी तरह मलबे के पास पहुंच गया। मलबे में अब मिट्टी ही मिट्टी थी, जिसमें जहां-तहां टूटी और जली हुई ईंटें फंसी थीं। लोहे और लकड़ी का सामान उसमें से न जाने कब का निकाल लिया गया था। केवल जले हुए दरवाज़े का चौखट न जाने कैसे बचा रह गया था, जो मलबे में से बाहर को निकला हुआ था। पीछे की ओर दो जली हुई अलमारियां और बाकी थीं, जिनकी कालिख पर अब सफेदी की हल्की-हल्की तह उभर आई थी। मलबे को पास से देखकर ग़नी ने कहा, "यह रह गया है, यह ?" और जैसे उसके घुटने जवाब दे गए और वह जले हुए चौखट को पकड़कर बैठ गया। क्षण-भर बाद उसका सिर भी चौखट से जा लगा और उसके मुंह से बिलखने की सी आवाज़ निकली, "ओए ! ओए चिराग़दीना !"

जले हुए किवाड़ का चौखट साढ़े सात साल मलबे में से सिर निकाले खड़ा तो रहा था, मगर उसकी लकड़ी बुरी तरह भुरभुरा गई थी। ग़नी के सिर के छूने से उसके कई रेशे झड़कर बिखर गए। कुछ रेशे ग़नी की टोपी और बालों पर आ गिरे। लकड़ी के रेशों के साथ एक केंचुआ भी नीचे गिरा, जो ग़नी के पैर से छः-आठ इंच दूर नाली के साथ बनी ईंटों की पटरी पर सरसराने लगा। वह अपने लिए सूराख ढूंढता हुआ ज़रा-सा सिर उठाता, मगर दो-एक बार सिर पटककर और निराश होकर दूसरी ओर को मुड़ जाता।

खिड़कियों में से झांकने वाले चेहरों की संख्या पहले से कहीं बढ़ गई थी। उनमें चेहमेगोइयां चल रही थीं कि आज कुछ न कुछ ज़रूर होगा··· चिराग़दीन का बाप ग़नी आ गया है, इसलिए साढ़े सात साल पहले की सारी घटना आज खुल जाएगी। लोगों को लग रहा था, जैसे वह मलबा ही ग़नी को सारी कहानी सुना देगा कि शाम के वक्त चिराग़ ऊपर के कमरे में खाना खा रहा था, जब रक्खे पहलवान ने उसे नीचे बुलाया कि वह एक

मिनट आकर एक ज़रूरी बात सुन जाय···पहलवान उन दिनों गली का बादशाह था। हिन्दुओं पर ही उसका काफी दबदबा था, चिराग़ तो खैर मुसलमान था। चिराग़ हाथ का कौर बीच में ही छोड़कर नीचे उतर आया। उसकी बीवी ज़ुबैदा और दोनों लड़कियां किश्वर और सुलताना खिड़कियों में से नीचे झांकने लगीं। चिराग़ ने ड्योढ़ी से बाहर कदम रखा ही था कि पहलवान ने उसे कमीज़ के कालर से पकड़कर खींच लिया और उसे गली में गिराकर उसकी छाती पर चढ़ बैठा। चिराग़ उसका छुरेवाला हाथ पकड़कर चिल्लाया, "न, रक्खे पहलवान, मुझे मत मार! हाय! मुझे बचाओ! ज़ुबैदा! मुझे बचा!" और ऊपर ज़ुबैदा, किश्वर और सुलताना हताश स्वर में चिल्लाईं। ज़ुबैदा चीखती हुई नीचे ड्योढ़ी की तरफ भागी। रक्खे के एक शागिर्द ने चिराग़ की जद्दोजहद करती हुई बांहें पकड़ लीं और रक्खा उसकी जांघों को घुटनों से दबाए हुए बोला, "चीखता क्यों है, भैण के···तुझे पाकिस्तान दे रहा हूं, ले!" और ज़ुबैदा के नीचे पहुंचने से पहले ही उसने चिराग़ को पाकिस्तान दे दिया।

आसपास के घरों की खिड़कियां बन्द हो गईं। जो लोग दृश्य के साक्षी थे, उन्होंने दरवाज़े बन्द करके अपने को इस घटना के उत्तरदायित्व से मुक्त कर लिया। बन्द किवाड़ों में भी उन्हें देर तक ज़ुबैदा, किश्वर और सुलताना के चीखने की आवाज़ें सुनाई देती रहीं। रक्खे पहलवान और उसके साथियों ने उन्हें भी उसी रात पाकिस्तान देकर विदा कर दिया, मगर दूसरे तवील रास्ते से। उनकी लाशें चिराग़ के घर में न मिलकर बाद में नहर के पानी में पाई गईं।

दो दिन तक चिराग़ के घर की खानातलाशी होती रही। जब उसका सारा सामान लूटा जा चुका, तो न जाने किसने उस घर को आग लगा दी। रक्खे पहलवान ने कसम खाई थी कि वह आग लगाने वाले को ज़िंदा ज़मीन में गाड़ देगा, क्योंकि उसने उस मकान पर नज़र रखकर ही चिराग़ को मारने का निश्चय किया था। उसने उस मकान को शुद्ध करने के लिए हवन-सामग्री भी खरीद रखी थी। मगर आग लगाने वाले का पता ही नहीं चल सका,

उसे ज़िंदा गाड़ने की नौबत तो बाद में आती। अब साढ़े सात साल से रक्खा पहलवान उस मलबे को अपनी जागीर समझता आ रहा था, जहां न वह किसीको गाय-भैंस बांधने देता था और न खोंचा लगाने देता था। उस मलबे से बिना उसकी अनुमति के कोई ईंट भी नहीं उठा सकता था।

लोग आशा कर रहे थे कि यह सारी कहानी ज़रूर किसी न किसी तरह ग़नी के कानों तक पहुंच जाएगी···जैसे मलबे को देखकर उसे अपने-आप ही सारी घटना का पता चल जाएगा। और ग़नी मलबे की मिट्टी नाखूनों से खोद-खोदकर अपने ऊपर डाल रहा था और दरवाज़े के चौखट को बांह में लिए हुए रो रहा था, "बोल, चिराग़दीना, बोल! तू कहां चला गया, ओए? ओ किश्वर! ओ सुलताना! हाय मेरे बच्चे ओएऽऽ! ग़नी को कहां छोड़ दिया, ओएऽऽऽ!"

और भुरभुरे किवाड़ से लकड़ी के रेशे झड़ते जा रहे थे।

पीपल के नीचे सोए हुए रक्खे पहलवान को जाने किसीने जगा दिया, या वह वैसे ही जाग गया। यह जानकर कि पाकिस्तान से अब्दुलग़नी आया है और अपने मकान के मलबे पर बैठा है, उसके गले में थोड़ा झाग उठ आया, जिससे उसे खांसी हो आई और उसने कुएं के फर्श पर थूक दिया। मलबे की ओर देखकर उसकी छाती से धौंकनी का सा स्वर निकला और उसका निचला ओंठ थोड़ा बाहर को फैल आया।

"ग़नी अपने मलबे पर बैठा है," उसके शागिर्द लच्छे पहलवान ने उसके पास आकर बैठते हुए कहा।

"मलबा उसका कैसे है? मलबा हमारा है!" पहलवान ने झाग के कारण घरघराती हुई आवाज़ में कहा।

"मगर वह वहां पर बैठा है," लच्छे ने आंखों में रहस्यमय संकेत लाकर कहा।

"बैठा है, बैठा रहे, तू चिलम ला!" उसकी टांगें थोड़ी फैल गईं और उसने अपनी नंगी जांघों पर हाथ फेरा।

"मनोरी ने अगर उसे कुछ बताया-वताया, तो···?" लच्छे ने चिलम

भरने के लिए उठते हुए उसी रहस्यपूर्ण दृष्टि से देखकर कहा।

"मनोरी की शामत आई है?"

लच्छा चला गया।

कुएं पर पीपल की कई पुरानी पत्तियां बिखरी थीं। रक्खा उन पत्तियों को उठा-उठाकर हाथों में मसलता रहा। जब लच्छे ने चिलम के नीचे कपड़ा लगाकर उसके हाथ में दिया, तो उसने कश खींचते हुए पूछा, "और तो किसीसे ग़नी की बात नहीं हुई?"

"नहीं।"

"ले," और उसने खांसते हुए चिलम लच्छे के हाथ में दे दी। लच्छे ने देखा कि मनोरी मलबे की तरफ से ग़नी की बांह पकड़े हुए आ रहा है। वह उकड़ूं होकर चिलम के लम्बे-लम्बे कश खींचने लगा। उसकी आंखें आधा क्षण रक्खे के चेहरे पर टिकतीं और आधा क्षण ग़नी की ओर लगी रहतीं।

मनोरी ग़नी की बांह पकड़े हुए उससे एक कदम आगे चल रहा था, जैसे उसकी कोशिश हो कि ग़नी कुएं के पास से बिना रक्खे पहलवान को देखे ही निकल जाए। मगर रक्खा जिस तरह बिखरकर बैठा था, उससे ग़नी ने उसे दूर से देख लिया। कुए के पास पहुंचते न पहुंचते उसकी दोनों बांहें फैल गईं और उसने कहा, "रक्खे पहलवान!"

रक्खे ने गरदन उठाकर और आंखें ज़रा छोटी करके उसे देखा। उसके गले में अस्पष्ट-सी घरघराहट हुई, पर वह बोला कुछ नहीं।

"रक्खे पहलवान, मुझे पहचाना नहीं?" ग़नी ने बांहें नीची करके कहा, "मैं ग़नी हूं, अब्दुल ग़नी, चिराग़दीन का बाप!"

पहलवान ने संदेहपूर्ण दृष्टि से उसका ऊपर से नीचे तक जायज़ा लिया। अब्दुल ग़नी की आंखों में उसे देखकर चमक आ गई थी। सफेद दाढ़ी के नीचे उसके चेहरे की झुर्रियां ज़रा फैल गई थीं। रक्खे का निचला ओंठ फड़का, फिर उसकी छाती से भारी-सा स्वर निकला, "सुना, ग़निया!"

ग़नी की बांहें फिर फैलने को हुईं, परन्तु पहलवान पर कोई प्रतिक्रिया न देखकर उसी तरह रह गईं। वह पीपल के तने का सहारा लेकर कुएं की

सिल पर बैठ गया।

ऊपर खिड़कियों में चेहमेगोइयां तेज़ हो गई कि अब दोनों आमने-सामने आ गए हैं, तो बात ज़रूर खुलेगी···फिर हो सकता है, दोनों में गाली-गलौज भी हो···अब रक्खा ग़नी को कुछ नहीं कह सकता, अब वो दिन नहीं रहे··· बड़ा मलबे का मालिक बनता था !···असल में मलबा न इसका है, न ग़नी का। मलबा तो सरकार की मलकियत है···किसीको गाय का खूंटा नहीं लगाने देता।···मनोरी भी डरपोक है। इसने ग़नी को बताया क्यों नहीं कि रक्खे ने ही चिराग़ और उसके बीवी-बच्चों को मारा है···रक्खा आदमी नहीं, सांड़ है। दिन-भर सांड़ की तरह गली में घूमता है···गनी बेचारा कितना दुबला हो गया है ? दाढ़ी के सारे बाल सफेद हो गए हैं !···

ग़नी ने कुएं की सिल पर बैठकर कहा, "देख, रक्खे पहलवान, क्या से क्या रह गया है ? भरा-पूरा घर छोड़कर गया था और आज यहां मिट्टी देखने आया हूं। बसे हुए घर की यही निशानी रह गई है। तू सच पूछे रक्खे, तो मेरा यह मिट्टी भी छोड़कर जाने को जी नहीं करता !" और उसकी आंखें छलछला आईं।

पहलवान ने फैली हुई टांगें समेट लीं और अंगोछा कुएं की मुंडेर से उठाकर कंधे पर डाल लिया। लच्छे ने चिलम उसकी तरफ बढ़ा दी और वह कश खींचने लगा।

"तू बता, रक्खे, यह सब हुआ किस तरह ?" ग़नी आंसू रोकता हुआ आग्रह के साथ बोला, "तुम लोग उसके पास थे, सबमें भाई-भाई की सी मुहब्बत थी, अगर वह चाहता तो वह तुममें से किसीके घर में नहीं छिप सकता था ? उसे इतनी भी समझ नहीं आई ?"

"ऐसा ही है," रक्खे को स्वयं लगा कि उसकी आवाज़ में कुछ अस्वाभाविक-सी गूंज है। उसके ओंठ गाढ़े लार से चिपक-से गए थे। उसकी मूंछों के नीचे से पसीना उसके ओंठों पर आ रहा था। उसके माथे पर किसी चीज़ का दबाव पड़ रहा था और उसकी रीढ़ की हड्डी सहारा चाह रही थी।

"पाकिस्तान का क्या हाल है ?" उसने वैसे ही स्वर में पूछा। उसके

गले की नसों में तनाव आ गया था। उसने अंगोछे से बगलों का पसीना पोंछा और गले का झाग मुंह में खींच-खींचकर गली में थूक दिया।

"मैं क्या हाल बताऊं, रक्खे," ग़नी दोनों हाथों से छड़ी पर ज़ोर देकर झुकता हुआ बोला, "मेरा हाल पूछे, तो वह मेरा खुदा ही जानता है। मेरा चिराग़ साथ होता, तो और बात थी···रक्खे, मैं उसे समझा हटा था कि मेरे साथ चला चल। मगर वह अड़ रहा कि नया मकान छोड़कर कैसे जाऊं, यहां अपनी गली है, कोई खतरा नहीं है। भोले कबूतर ने यह नहीं सोचा कि गली में खतरा न सही, बाहर से तो खतरा आ सकता है? मकान की रखवाली के लिए चारों जनों ने जान दे दी!···रक्खे, उसे तेरा बहुत भरोसा था। कहता था कि रक्खे के रहते कोई मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मगर जब आनी आई, तो रक्खे के रोके भी न रुक सकी।"

रक्खे ने सीधा होने की चेष्टा की, क्योंकि उसकी रीढ़ की हड्डी दर्द कर रही थी। उसे अपनी कमर और जांघों के जोड़ पर सख्त दबाव महसूस हो रहा था। पेट की अंतड़ियों के पास जैसे कोई चीज़ उसकी सांस को जकड़ रही थी। उसका सारा जिस्म पसीने से भीग गया था और उसके पैरों के तलुवों में चुनचुनाहट हो रही थी। बीच-बीच में नीली फुलझड़ियां-सी ऊपर से उतरतीं और उसकी आंखों के सामने से तैरती हुई निकल जातीं। उसे अपनी ज़बान और ओंठों के बीच का अन्तर कुछ ज़्यादा महसूस हो रहा था। उसने अंगोछे से ओंठों के कोनों को साफ किया और उसके मुंह से निकला, "हे प्रभु सच्चिआ, तू ही है, तू ही है, तू ही है!"

ग़नी ने लक्षित किया कि पहलवान के ओंठ सूख रहे हैं और उसकी आखों के इर्द-गिर्द दायरे गहरे हो आए हैं, तो वह उसके कन्धे पर हाथ रखकर बोला, "जी हल्का न कर, रक्खिआ! जो होनी थी, सो हो गई। उसे कोई लौटा थोड़े ही सकता है? खुदा नेक की नेकी रखे और बद की बदी माफ करे! मेरे लिए चिराग़ नहीं, तो तुम लोग तो हो। मुझे आकर इतनी ही तसल्ली हुई कि उस ज़माने की कोई तो यादगार है। मैंने तुमको देख लिया, तो चिराग़ को देख लिया। अल्लाह तुम लोगों को सेहतमन्द रखे! जीते

रहो और खुशियां देखो !" और ग़नी छड़ी पर दबाव देकर उठ खड़ा हुआ। चलते हुए उसने फिर कहा, "रक्खे पहलवान, याद रखना !"

रक्खे के गले में स्वीकृति की मद्धम-सी आवाज़ निकली। अंगोछा बीच में लिए हुए उसके दोनों हाथ जुड़ गए। ग़नी गली के वातावरण को हसरत-भरी नज़र से देखता हुआ धीरे-धीरे गली से बाहर चला गया।

ऊपर खिड़कियों में थोड़ी देर चेहमेगोइयां चलती रहीं कि मनोरी ने गली से बाहर निकलकर ज़रूर ग़नी को सब कुछ बता दिया होगा···ग़नी के सामने रक्खे का तालू किस तरह खुश्क हो गया था ?···रक्खा अब किस मुंह से लोगों को मलबे पर गाय बांधने से रोकेगा ?···बेचारी ज़ुबैदा ! बेचारी कितनी अच्छी थी ! कभी किसीसे मन्दा बोल नहीं बोली···रक्खे मरदूद का घर न घाट, इसे किस मां-बहन का लिहाज़ था ?

और थोड़ी ही देर में स्त्रियां घरों से गली में उतर आईं, बच्चे गली में गुल्ली-डण्डा खेलने लगे और दो बारह-तेरह बरस की लड़कियां किसी बात पर एक-दूसरी से गुत्थम-गुत्था हो गईं।

रक्खा गहरी शाम तक कुएं पर बैठा खंखारता और चिलम फूंकता रहा। कई लोगों ने वहां से गुज़रते हुए उससे पूछा, "रक्खे शाह, सुना है, आज ग़नी पाकिस्तान से आया था ?"

"आया था," रक्खे ने हर बार एक ही उत्तर दिया।

"फिर ?"

"फिर कुछ नहीं, चला गया।"

रात होने पर पहलवान रोज़ की तरह गली के बाहर बाईं ओर की दुकान के तख्ते पर आ बैठा। रोज़ अक्सर वह रास्ते से गुज़रने वाले परिचित लोगों को आवाज़ दे-देकर बुला लेता था और उन्हें सट्टे के गुर और सेहत के नुस्खे बताया करता था, मगर उस दिन वह लच्छे को अपनी वैश्नो देवी की यात्रा का विवरण सुनाता रहा, जो उसने पन्द्रह साल पहले की थी। लच्छे को विदा करके वह गली में आया, तो मलबे के पास लोकू पण्डित की भैंस को खड़ी देखकर वह रोज़ की आदत के मुताबिक उसे धक्के दे-देकर

हटाने लगा —तत्-तत्-तत्···तत्-तत्···

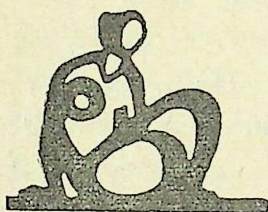
और भैंस को हटाकर वह सुस्ताने के लिए मलबे के चौखट पर बैठ गया। गली उस समय बिलकुल सुनसान थी। कमेटी की कोई बत्ती न होने से वहां शाम से ही अन्धेरा हो जाता था। मलबे के नीचे नाली का पानी हल्की आवाज़ करता हुआ बह रहा था। रात की खामोशी के साथ मिली हुई कई तरह की हल्की-हल्की आवाज़ें मलबे की मिट्टी में से निकल रही थीं ···च्यु च्यु च्यु···चिक्-चिक्-चिक्···चिरर्र्र् इर्र्र्र्-रीरीरीरी-चिर्र्-र्र्···एक झटका हुआ। कौआ न जाने कहां से उड़कर लकड़ी के चौखट पर आ बैठा। उससे लकड़ी के रेशे इधर-उधर छितरा गए। कौए के वहां बैठते न बैठते मलबे के एक कोने में लेटा हुआ कुत्ता गुर्राकर उठा और ज़ोर-ज़ोर से भौंकने लगा, वऊ-अऊ-अऊऽऽ-वऊ! कौआ कुछ देर सहमा-सा चौखट पर बैठा रहा, फिर वह पंख फड़फड़ाता हुआ उड़कर कुएं के पीपल पर चला गया। कौए के उड़ जाने पर कुत्ता और नीचे उतर आया और पहलवान की ओर मुंह करके भौंकने लगा। पहलवान उसे हटाने के लिए भारी आवाज़ में बोला—दुर् दुर दुर्··दुरे!

मगर कुत्ता और पास आकर भौंकने लगा—वउ-अउ-वउ-वउ-वउ-वउ···

—हट-हट, दुर्र्र्र्-दुर्र्र्र् दुरे!···

—वउ-अऊऽऽ-अउ-अउ-अउ-अउ!···

पहलवान ने एक ढेला उठाकर कुत्ते की ओर फेंका। कुत्ता थोड़ा पीछे हट गया, पर उसका भौंकना बन्द नहीं हुआ। पहलवान मुंह ही मुंह कुत्ते को मां की गाली देकर वहां से उठ खड़ा हुआ और धीरे-धीरे जाकर कुएं की सिल पर लेट गया। पहलवान के वहां से हटने पर कुत्ता गली में उतर आया और कुएं की ओर मुंह करके भौंकने लगा। काफी देर भौंककर जब गली में उसे कोई प्राणी चलता-फिरता दिखाई नहीं दिया, तो वह एक बार कान झटकाकर मलबे पर लौट आया और वहां कोने में बैठकर गुर्राने लगा।



# एक और ज़िन्दगी

…और उस एक क्षण के लिए प्रकाश के हृदय की धड़कन जैसे रुकी रही। कितना विचित्र था वह क्षण—आकाश से टूटकर गिरे हुए नक्षत्र जैसा! कोहरे के वक्ष में एक लकीर-सी खींचकर वह क्षण सहसा व्यतीत हो गया?

कोहरे में से गुज़रकर जाती हुई आकृतियों को उसने एक बार फिर ध्यान से देखा। क्या यह सम्भव था कि व्यक्ति की आंखें इस हद तक उसे धोखा दें? तो जो कुछ वह देख रहा था, वह यथार्थ ही नहीं था?

कुछ ही क्षण पहले जब वह कमरे से निकलकर बालकनी पर आया था, तो क्या उसने कल्पना में भी यह सोचा था कि आकाश के ओर-छोर तक फैले हुए कोहरे में, गहरे पानी की निचली सतह पर तैरती हुई मछलियों जैसी जो आकृतियां नज़र आ रही हैं, उनमें कहीं वे दो आकृतियां भी होंगी? मंदिरवाली सड़क से आते हुए दो कुहरीले रंगों पर जब उसकी नज़र पड़ी थी, तब भी क्या उसके मन में कहीं ऐसा अनुमान जागा था? फिर भी न जाने क्यों उसे लग रहा था जैसे बहुत समय से, बल्कि कई दिनों से, वह उनके वहां से गुज़रने की प्रतीक्षा कर रहा हो, जैसेकि उन्हें देखने के लिए ही वह कमरे से निकलकर बालकनी पर आया हो, और उन्हींको ढूंढ़ती हुई उसकी आंखें मन्दिर वाली सड़क की तरफ मुड़ी हों।—यहां तक कि उस धानी आंचल और नीली नेकर के रंग भी जैसे उसके पहचाने हुए हों और कोहरे के विस्तार में वह उन दो रंगों को ही खोज रहा हो। वैसे उन आकृतियों के बालकनी के नीचे पहुंचने तक उसने उन्हें पहचाना नहीं था।

परन्तु एक क्षण में सहसा वे आकृतियां इस तरह उसके सामने स्पष्ट हो उठी थीं जैसे जड़ता के क्षण में अवचेतन की गहराई में डूबा हुआ कोई विचार एकाएक चेतना की सतह पर कौंध गया हो।

नीली नेकरवाली आकृति घूमकर पीछे की तरफ देख रही थी। क्या उसे भी कोहरे में किसीकी खोज थी? और किसकी? प्रकाश का मन हुआ कि उसे आवाज़ दे दे, मगर उसके गले से शब्द नहीं निकले। कोहरे का समुद्र अपनी गम्भीरता में खामोश था मगर उसे उसकी अपनी खामोशी एक ऐसे तूफान की तरह थी जो हवा न मिलने से अपने अन्दर ही घुमड़कर रह गया हो नहीं तो क्या वह इतना ही असमर्थ था कि उसके गले से एक शब्द भी न निकल सके?

वह बालकनी से हटकर कमरे में आ गया। वहां आते ही अपने अस्त-व्यस्त सामान पर नज़र पड़ी, तो शरीर में निराशा की एक सिहरन दौड़ गई। क्या यही वह ज़िन्दगी थी जिसके लिए उसने···? परन्तु उसे लगा कि उसके पास कुछ भी सोचने के लिए समय नहीं है। उसने जल्दी-जल्दी कुछ चीज़ों को उठाया और रख दिया जैसेकि कोई चीज़ ढूंढ़ रहा हो जो उसे मिल न रही हो। अचानक खूंटी पर लटकती हुई पतलून पर नज़र पड़ी, तो उसने पाजामा उतारकर जल्दी से उसे पहन लिया। फिर पल-भर खोया-सा खड़ा रहा। उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या चाहता है। क्या वह उन दोनों के पीछे जाना चाहता था? या बालकनी पर खड़ा होकर पहले की तरह उन्हें देखते रहना ही चाहता था?

अचानक उसका हाथ मेज़ पर रखे हुए ताले पर पड़ गया, तो उसने उसे उठा लिया। जल्दी से दरवाज़ा बन्द करके वह ज़ीने से उतरने लगा। ज़ीने पर आकर पता चला कि जूता नहीं पहना। वह पल-भर के लिए ठिठककर खड़ा रहा मगर लौटकर नहीं गया। नीचे सड़क पर पहुंचते ही पांव कीचड़ में लथपथ हो गए। दूर देखा—वे दोनों आकृतियां घोड़ों के अड्डे के पास पहुंच चुकी थीं। वह जल्दी-जल्दी चलने लगा। पास से गुज़-रते हुए एक घोड़वाले से उसने कहा कि वह आगे जाकर नीली नेकरवाले

बच्चे को रोक ले—उससे कहे कि कोई उससे मिलने के लिए पीछे आ रहा है। घोड़ेवाला घोड़ा दौड़ाता हुआ गया मगर उन दोनों के पास न रुककर उनसे आगे निकल गया। वहां जाकर उसने न जाने किसे उसका संदेश दे दिया।

जल्दी-जल्दी चलते हुए भी प्रकाश को लग रहा था जैसे वह बहुत आहिस्ता चल रहा हो, जैसे उसके घुटने जकड़ गए हों और रास्ता बहुत-बहुत लम्बा हो गया हो। उसका मन इस आशंका से बेचैन था कि उसके पास पहुंचने तक वे लोग घोड़ों पर सवार होकर वहां से चल न दें और जिस दूरी को वह नापना चाहता था, वह ज्यों की त्यों न बनी रहे। मगर ज्यों-ज्यों फासला कम हो रहा था, उसका कम होना भी उसे अखर रहा था। क्या वह जान-बूझकर अपने को एक ऐसी स्थिति की ओर नहीं ले जा रहा था जिससे उसे अपने को बचाना चाहिए था ?

उन लोगों ने घोड़े नहीं लिए थे। जब वह उनसे तीन-चार गज़ दूर रह गया, तो सहसा उसके कदम रुक गए। तो क्या सचमुच अब उसे उस स्थिति का सामना करना ही था ?

"पाशी ! " इससे पहले कि वह निश्चय कर पाता, अनायास उसके मुंह से निकल गया।

बच्चे की बड़ी-बड़ी आंखें अचानक उसकी तरफ घूम गईं—साथ ही उसकी मां की आंखें भी। कोहरे में अचानक कई-कई बिजलियां कौंध गईं। प्रकाश दो-एक कदम और आगे बढ़ गया। बच्चा विस्मित आंखों से उसकी तरफ देखता हुआ अपनी मां के साथ सट गया।

"पलाश, इधर आ मेरे पास," प्रकाश ने हाथ से चुटकी बजाते हुए कहा, जैसेकि यह हर रोज़ की एक साधारण घटना हो और बच्चा अभी कुछ मिनट पहले ही उसके पास से अपनी मां के पास गया हो।

बच्चे ने मां की तरफ देखा। वह अपनी आंखें हटाकर दूसरी तरफ देख रही थी। बच्चा और भी उसके साथ सट गया और उसकी आंखें विस्मय के साथ-साथ एक शरारत से चमक उठीं।

प्रकाश को वहां खड़े-खड़े उलझन हो रही थी। उसे लग रहा था कि खुद चलकर उस दूरी को नापने के सिवा उसके पास कोई चारा नहीं है। वह लम्बे-लम्बे डग भरकर बच्चे के पास पहुंचा और उसे उसने बांहों से उठा लिया। बच्चे ने एक बार किलकारकर उसके हाथों से छूटने की चेष्टा की, परन्तु दूसरे ही क्षण अपनी छोटी-छोटी बांहें उसके गले में डालकर वह उससे लिपट गया। प्रकाश उसे लिए हुए थोड़ा एक तरफ को हट आया।

"तूने पापा को पहचाना नहीं था क्या?"

"पैताना ता," बच्चा बांहें उसके गले में डालकर झूलने लगा।

"तो तू झट से पापा के पास आया क्यों नहीं?"

"नहीं आया," कहकर बच्चे ने उसे चूम लिया।

"तू आज ही यहां आया है?"

"नहीं, तल आया ता।"

"रहेगा या आज ही लौट जाएगा?"

"अभी तीन-चाल दिन लहूंदा।"

"तो पापा के पास मिलने आएगा न?"

"आऊंदा।"

प्रकाश ने एक बार उसे अच्छी तरह अपने साथ सटाकर चूम लिया, तो बच्चा चिल्लाकर उसके माथे, आंखों और गालों को जगह-जगह चूमने लगा।

"कैसा बच्चा है!" पास खड़े एक कश्मीरी मज़दूर ने सिर हिलाते हुए कहा।

"तुम तहां लहते हो?" बच्चा बांहें उसकी गरदन में डालते हुए जैसे उसे अच्छी तरह देखने के लिए थोड़ा पीछे को हट गया।

"वहां!" प्रकाश ने दूर अपने कमरे की बालकनी की तरफ इशारा किया। "तू कब तक वहां आएगा?"

"अभी ऊपल जाकल दूद पिऊंदा, उछके बाद तुमाले पाछ आऊंदा।"

बच्चे ने एक बार अपनी मां की तरफ देखा और उसकी बांहों से निकलने के लिए मचलने लगा।

"मैं वहां बालकनी में कुरसी डालकर बैठा रहूंगा और तेरा इन्तज़ार करूंगा," बच्चा बांहों से उतरकर अपनी मां की तरफ भाग गया, तो प्रकाश ने पीछे से कहा। क्षण-भर के लिए उसकी आंखें बच्चे की मां से मिल गईं, परन्तु दूसरे ही क्षण दोनों दूसरी-दूसरी तरफ देखने लगे। बच्चा जाकर मां की टांगों से लिपट गया, तो वह कोहरे के पार देवदारों की धुंधली रेखाओं को देखती हुई उससे बोली, "तुझे दूध पीकर आज खिलनमर्ग नहीं चलना है क्या?"

"नहीं," बच्चे ने उसकी टांगों के सहारे उछलते हुए सपाट जवाब दिया, "मैं दूद पीतल पापा ते पाछ जाऊंदा।"

तीन दिन तीन रातों से आकाश घिरा हुआ था। कोहरा धीरे-धीरे इतना घना हो गया था कि बालकनी से आगे कोई रूप, कोई रंग नज़र नहीं आता था—आकाश की पारदर्शिता पर जैसे गाढ़ा सफेदा पोत दिया गया था। ज्यों-ज्यों समय बीत रहा था, कोहरा और घना होता जा रहा था। कुरसी पर बैठे हुए किसी-किसी क्षण महसूस होने लगता था जैसे वह बालकनी पहाड़ियों से घिरे हुए खुले विस्तार में न होकर अन्तरिक्ष के किसी रहस्यमय प्रदेश में बनी हो—नीचे और ऊपर केवल आकाश ही आकाश हो, जिसके अतल में बालकनी की सत्ता एक अपने-आपमें पूर्ण और स्वतन्त्र लोक की तरह हो···।

उसकी आंखें इस तरह एकटक सामने की तरफ देख रही थीं—जैसे आकाश में और कोहरे में उसे कोई अर्थ ढूंढ़ना हो···अपनी बालकनी के वहां होने के रहस्य को जानना हो।

हवा से कोहरे के बादल कई-कई रूप लेकर इधर से उधर भटक रहे थे—अपनी गहराई में फैलते और सिमटते हुए वे अपनी थाह नहीं पा रहे थे। बीच में कहीं-कहीं देवदारों की फुनगियां एक हरी लकीर की तरह

निकली हुई थीं—कोहरे के आकाश पर लिखी गई एक अस्त-व्यस्त लिपि जैसी। देखते-देखते वह लकीर भी गुम हो जाती थी—कोहरे का हाथ उसे रहने देना नहीं चाहता था। लकीर को मिटते देखकर स्नायुओं में एक तनाव-सा आ रहा था—जैसे किसी भी तरह वह उस लकीर को मिटाने से बचा लेना चाहता हो। परन्तु जब एक बार लकीर मिटकर बाहर नहीं निकली, तो उसने सिर पीछे को डाल लिया और खुद भी कोहरे में कोहरा होकर पड़ रहा...।

अतीत के कोहरे में कहीं वह एक दिन भी था जो चार बरस बीत जाने पर भी आज तक बीत नहीं सका था...।

बच्चे की पहली वर्षगांठ थी उस दिन—वही उनके जीवन की सबसे बड़ी गांठ बन गई थी...।

विवाह के कुछ महीने बाद से ही पति-पत्नी अलग-अलग रहने लगे थे। विवाह के साथ जो सूत्र जुड़ना चाहिए था, वह जुड़ नहीं सका था। दोनों अलग-अलग काम करते थे और अपना-अपना स्वतन्त्र ताना-बाना बुनकर जी रहे थे। लोकाचार के नाते साल-छः महीने में कभी एक बार मिल लिया करते थे। वह लोकाचार ही इस बच्चे को संसार में ले आया था...।

बीना समझती थी कि इस तरह जान-बुझकर उसे फंसा दिया गया है। प्रकाश सोचता था कि अनजाने में ही उससे एक अपराध हो गया है। परन्तु जन्म के पांचवें या छठे रोज़ बच्चे की हालत सहसा बहुत खराब हो गई, तो वह अपने कमरे में अकेला बैठा हवा में बच्चे के आकार को देखता हुआ कहता रहा था, "देख, तुझे जीना है। तू इस तरह नहीं जा सकता। सुन रहा है? तुझे जीना है। हर हालत में जीना है। मैं तुझे जाने नहीं दूंगा। समझा?"

साल-भर से बच्चा मां के पास ही रह रहा था। बीच में बच्चे की दादी छः-सात महीने उसके पास रह आई थी।

पहली वर्षगांठ पर बीना ने लिखा था कि वह बच्चे को लेकर अपने पिता के यहां लखनऊ जा रही है। वहीं पर बच्चे के जन्म-दिन की पार्टी करेगी।

प्रकाश ने उसे तार दिया था कि वह भी उस दिन लखनऊ आएगा। अपने एक मित्र के यहां हज़रतगंज में ठहरेगा। अच्छा होगा कि पार्टी वहीं पर की जाए। लखनऊ के कुछ मित्रों को भी उसने सूचित कर दिया था कि उसके बच्चे की वर्षगांठ के अवसर पर वे उसके साथ चाय पीने के लिए आएं।

उसने सोचा था कि बीना उसे स्टेशन पर मिल जाएगी, परन्तु वह नहीं मिली। हज़रतगंज पहुंचकर नहा-धो चुकने के बाद उसने बीना के पास सन्देश भेजा कि वह वहां पहुंच गया है, कुछ लोग साढ़े चार-पांच बजे चाय पर आएंगे, इसलिए वह उस समय तक बच्चे को लेकर अवश्य वहां पहुंच जाए। परन्तु पांच बजे, छः बजे, सात बज गए, बीना बच्चे को लेकर नहीं आई। दूसरी बार सन्देश भेजने पर पता चला कि वहां उन लोगों की पार्टी चल रही है। बीना ने कहला भेजा कि बच्चा आठ बजे तक खाली नहीं होगा, इसलिए वह उस समय उसे लेकर नहीं आ सकती। प्रकाश ने अपने मित्रों को चाय पिलाकर विदा कर दिया। बच्चे के लिए खरीदे हुए उपहार बीना के पिता के यहां भेज दिए। साथ में यह सन्देश भी भेजा कि बच्चा जब भी खाली हो, उसे थोड़ी देर के लिए उसके पास भेज दिया जाए।

परन्तु आठ के बाद नौ बजे, दस बजे, बारह बज गए पर बीना न तो बच्चे को लेकर ही आई और न ही उसने उसे किसी और के साथ भेजा।

प्रकाश रात-भर सोया नहीं। उसके दिमाग को जैसे कोई छैनी से छीलता रहा।

सुबह उसने फिर बीना के पास सन्देश भेजा। इस बार बीना बच्चे को लेकर आई। उसने बताया कि रात को पार्टी देर तक चलती रही, इसलिए उसका आना सम्भव नहीं था—अगर वास्तव में उसे बच्चे से प्यार था, तो उसका कर्तव्य था कि वह अपने उपहार लेकर खुद उनके यहां पार्टी में आ

जाता…।

उस दिन सुबह से आरम्भ हुई बात आधी रात तक चलती रही। प्रकाश बार-बार कहता रहा, "वीना, मैं इस बच्चे का पिता हूं। पिता होने के नाते मुझे यह अधिकार तो है ही कि मैं बच्चे को अपने पास बुला सकूं।"

परन्तु बीना का उत्तर था, "आपके पास पिता का दिल होता, तो क्या आप पार्टी में न आते? आप मुझसे पूछें, तो मैं तो कहूंगी कि यह एक आकस्मिक घटना ही है कि आप इसके पिता हैं।"

"बीना!" वह फटी-फटी आंखों से उसके चेहरे की तरफ देखता रह गया। "तुम बताओ, तुम चाहती क्या हो?"

"कुछ भी नहीं। मैं आपसे क्या चाहूंगी?"

"तुमने सोचा है कि इस बच्चे के भविष्य का क्या होगा?"

"जब हम अपने ही भविष्य के बारे में नहीं सोच सकते, तो इसके भविष्य के बारे में क्या सोचेंगे?"

"क्या तुम यह पसन्द करोगी कि बच्चे को मुझे सौंप दो और खुद स्वतन्त्र हो जाओ?"

"बच्चे को आपको सौंप दूं?" बीना के स्वर में वितृष्णा गहरी हो गई। "इतनी मूर्ख मैं नहीं हूं।"

"तो क्या तुम यही चाहती हो कि इसका निर्णय करने के लिए अदालत में जाया जाए?"

"आप अदालत में जाना चाहें तो मुझे उसमें भी एतराज़ नहीं है। ज़रूरत होने पर मैं सुप्रीमकोर्ट तक लड़ूंगी। आपका बच्चे पर कोई अधिकार नहीं है।"

'बच्चे को पिता से ज्यादा मां की ज़रूरत होती है,' कई दिन…कई सप्ताह वह मन ही मन संघर्ष करता रहा। 'जहां उसे दोनों न मिल सकते हों, वहां उसे मां तो मिलनी चाहिए ही। अच्छा है तुम बच्चे की बात भूल जाओ और नये सिरे से अपनी ज़िन्दगी बनाने की कोशिश करो।'

'मगर…।'

'फिज़ूल की हुज्जत में कुछ नहीं रखा है। बच्चे-ग्रच्चे तो होते ही रहते हैं। तुम सम्बन्ध विच्छेद करके फिर से ब्याह कर लो, तो घर में बच्चे ही बच्चे हो जाएंगे। समझ लेना कि इस एक बच्चे के साथ कोई दुर्घटना हो गई थी···।'

सोचने-सोचने में दिन, सप्ताह और महीने निकलते गए। क्या सचमुच इन्सान पहले की ज़िन्दगी को मिटाकर नये सिरे से ज़िन्दगी आरम्भ कर सकता है? क्या सचमुच ज़िन्दगी के कुछ वर्षों को एक दुःस्वप्न की तरह भूलने का प्रयत्न किया जा सकता है? बहुत-से इन्सान हैं जिनकी ज़िन्दगी कहीं न कहीं किसी न किसी दोराहे से गलत दिशा की ओर भटक जाती है। क्या यही उचित नहीं कि इन्सान उस रास्ते को बदलकर अपनी गलती सुधार ले? आखिर इन्सान को जीने के लिए एक ही जीवन तो मिलता है—वही प्रयोग के लिए और वही जीने के लिए। तो क्यों इन्सान एक प्रयोग की असफलता को जीवन की असफलता मान ले?

कोर्ट में कागज़ पर हस्ताक्षर करते समय छत के पंखे से टकराकर एक चिड़िया का बच्चा नीचे आ गिरा।

"हाय, हाय, चिड़िया मर गई," किसीने कहा।

"मरी नहीं, अभी ज़िन्दा है," कोई और बोला।

"चिड़िया नहीं है चिड़िया का बच्चा," किसी तीसरे ने कहा।

"नहीं, चिड़िया है।"

"नहीं चिड़िया का बच्चा है।"

"इसे उठाकर बाहर हवा में छोड़ दो।"

"नहीं, यहीं पड़ा रहने दो। बाहर इसे कोई बिल्ली खा जाएगी।"

"यह यहां आया किस तरह?"

"जाने किस तरह? रोशनदान के रास्ते आ गया होगा।"

"बेचारा कैसे तड़प रहा है!"

"शुक्र है पंखे ने इसे काट ही नहीं दिया।"

"काट दिया होता, तो बल्कि ग्रच्छा था। ग्रब इस तरह बेचारा क्या जिएगा ?"

तब तक पति-पत्नी दोनों ने कागज़ पर हस्ताक्षर कर दिए थे। बच्चा उस समय कोर्ट के ग्रहाते में कौवों के पीछे भागता हुग्रा किलकारियां मार रहा था। वहां धूल उड़ रही थी ग्रौर चारों तरफ मटियाली-सी धूप फैली थी...।

फिर वही दिन, सप्ताह ग्रौर महीने...!

ग्रढ़ाई साल गुज़र जाने पर भी प्रकाश फिर ज़िन्दगी ग्रारम्भ करने का निश्चय नहीं कर पाया था। उस ग्ररसे में बच्चा तीन बार उससे मिलने के लिए ग्राया था। वह नौकर के साथ ग्राता था ग्रौर दिन-भर रहकर ग्रंधेरा होने पर लौट जाता था। पहली बार वह उससे शरमाता रहा था, मगर बाद में उससे हिल-मिल गया था। प्रकाश बच्चे को लेकर घूमने जाता था, उसे ग्राइसक्रीम खिलाता था, खिलौने ले देता था। बच्चा जाने के समय हठ करता था, "ग्रबी नहीं जाऊंदा। दूद पीतल जाऊंदा। थाना थातल जाऊंदा।"

जब बच्चा इस तरह की बात कहता था, तो उसके ग्रन्दर सहसा कोई चीज़ सुलग उठती थी। उसका मन होता था कि नौकर को झिड़ककर वापस भेज दे ग्रौर बच्चे को हमेशा-हमेशा के लिए ग्रपने पास रख ले। जब नौकर बच्चे से कहता था, "बाबा, चलो ग्रब देर हो रही है," तो प्रकाश का शरीर एक हताश ग्रावेश से कांपने लगता ग्रौर बहुत कठिनता से वह ग्रपने को संभाल पाता। ग्राखिरी बार बच्चा रात के नौ बजे तक रुका रह गया, तो एक ग्रपरिचित व्यक्ति उसे लेने के लिए चला ग्राया था।

बच्चा उस समय उसकी गोदी में बैठा खाना खा रहा था।

"देखिए, ग्रब बच्चे को भेज दीजिए, इसे बहुत देर हो गई है," ग्रजनबी ने ग्राकर कहा।

"ग्राप देख रहे हैं बच्चा खाना खा रहा है," उसका मन हुग्रा कि मुक्का

मारकर उस आदमी के दांत तोड़ दे।

"हां, हां, आप खाना खिला दीजिए," अजनबी ने उदारता के साथ कहा, "मैं नीचे इन्तज़ार कर रहा हूं।"

गुस्से के मारे प्रकाश के हाथ इस तरह कांपने लगे कि उसके लिए बच्चे को खाना खिलाना असम्भव हो गया।

जब नौकर बच्चे को लेकर चला गया, तो उसने देखा कि बच्चे की टोपी वहीं पर रह गई है। वह टोपी लिए हुए भागकर नीचे पहुंचा, तो देखा कि नौकर और अजनबी के अलावा बच्चे के साथ कोई और भी है—उसकी मां। वे लोग चालीस-पचास गज़ आगे पहुंच गए थे। उसने नौकर को आवाज़ दी, तो चारों ने मुड़कर एक साथ उसकी तरफ देखा। नौकर टोपी लेने के लिए लौट आया और शेष तीनों आगे चलते रहे।

उस रात वह एक दोस्त की छाती पर सिर रखकर देर तक रोता रहा।

नये सिरे से फिर वही सवाल मन में उठने लगा। क्यों वह अपने को इस अतीत से पूरी तरह मुक्त नहीं कर लेता? यदि बसा हुआ घर-बार हो, तो अपने आसपास बच्चों की चहल-पहल में वह इस दुःख को भूल नहीं जाएगा? उसने अपने को बच्चे से इसीलिए तो अलग किया था कि अपने जीवन को एक नया मोड़ दे सके—फिर वह इस तरह अकेली ज़िन्दगी की यन्त्रणा किसलिए सह रहा था?

परन्तु नये सिरे से जीवन आरम्भ करने की कल्पना में सदा एक आशंका मिली रहती थी। वह उस आशंका से जितना ही लड़ता था, वह उतनी ही और प्रबल हो उठती थी। जब एक प्रयोग सफल नहीं हुआ तो यह कैसे कहा जा सकता था कि दूसरा प्रयोग सफल होगा ही?

वह पहले की भूल को दोहराना नहीं चाहता था, इसलिए उसकी आशंका ने उसे बहुत सतर्क कर दिया था। वह जिस किसी लड़की को अपनी भावी पत्नी के रूप में देखता, उसीके चेहरे में उसे अपने पहले जीवन की छाया नज़र आने लगती। हालांकि वह स्पष्ट रूप से इस विषय में कुछ भी

सोच नहीं पाता था, फिर भी उसे लगता था कि वह एक ऐसी ही लड़की के साथ जीवन बिता सकता है; जो हर दृष्टि से बीना के विपरीत हो। बीना में बहुत अहं था, वह उसके बराबर पढ़ी-लिखी थी, उससे ज़्यादा कमाती थी। उसे अपनी स्वतन्त्रता का बहुत मान था और वह समझती थी कि किसी भी परिस्थिति का वह अकेली रहकर मुकाबिला कर सकती हैं। शारीरिक दृष्टि से भी बीना काफी लम्बी-ऊंची थी। और उसपर भारी पड़ती थी। बातचीत भी वह खुले मरदाना ढंग से करती थी। वह अब एक ऐसी लड़की चाहता था जो हर तरह से उसपर निर्भर करे, जिसकी कमज़ोरियां एक पुरुष के आश्रय की अपेक्षा रखती हों।

और कुछ ऐसी ही लड़की थी निर्मला—उसके एक घनिष्ठ मित्र कृष्ण जुनेजा की बहन। उसने दो-एक बार उस लड़की को देखा था। बहुत सीधी-सादी मासूम-सी लड़की थी। बात करते हुए उसकी आंखें नीचे को झुक जाती थीं। साधारण पढ़ी-लिखी थी और बहुत साधारण ढंग से ही रहती थी। उसे देखकर अनायास मन में सहानुभूति उमड़ आती थी। छब्बीस-सत्ताईस बरस की होकर भी देखने में वह अठारह-उन्नीस से ज़्यादा की नहीं लगती थी। वह जुनेजा के घर की कठिनाइयों को जानता था। उन कठिनाइयों के कारण ही शायद इतनी उम्र तक उस लड़की का विवाह नहीं हो सका था। उसके साथ निर्मला के विवाह की बात चलाई गई, तो उसके मन के किसी कोने में सोया हुआ पुलक सहसा जाग उठा। उसे सचमुच लगा जैसे उसका खोया हुआ जीवन उसे वापस मिल रहा हो; जैसे अन्दर की एक टूटी हुई कल्पना फिर से आकार ग्रहण कर रही हो। हवा और आकाश में उसे एक और ही आकर्षण लगने लगा, रास्ते में बिकती हुई फूलों की वेनियां पहले से कहीं सुगन्धित प्रतीत होने लगीं। निर्मला ब्याह कर उसके घर में आई भी नहीं थी कि वह शाम को लौटते हुए उसके लिए वेनियां खरीदकर घर लाने लगा। अपना पहले का घर उसे छोटा लगने लगा, इसलिए उसने एक बड़ा घर ले लिया और उसे सजाने के लिए नया-नया सामान खरीद लाया। पास में ज़्यादा पैसे नहीं थे, इसलिए क़र्ज़

ले-लेकर भी उसने निर्मला के लिए न जाने क्या कुछ बनवा डाला…।

निर्मला हंसती हुई उसके घर में आई—और हंसती ही रही…।

पहले तो कुछ दिन वह नहीं समझ सका कि वह हंसी क्या है। निर्मला जब कभी बिना बात के हंसना शुरू कर देती और देर तक हंसती रहती, वह अवाक् होकर उसे देखता रहता। तीन-तीन चार-चार साल के बच्चे भी उस तरह अकस्मिक ढंग से नहीं हंस सकते जैसे वह हंसती थी। कोई व्यक्ति उसके सामने गिर जाता या कोई चीज़ किसीके हाथ से गिरकर टूट जाती तो उसके लिए अपनी हंसी रोकना असम्भव हो जाता। लगातार दस-दस मिनट तक वह हंसी से बेहाल हो रहती। वह उसे समझाने की चेष्टा करता कि ऐसी बातों पर नहीं हंसा जाता, तो निर्मला को और भी हंसी छूटती। वह उसे डांट देता, तो वह उसी तरह आकस्मिक ढंग से बिस्तर पर लेटकर हाथ-पैर पटकती हुई रोने लगती, चिल्ला-चिल्लाकर अपनी मरी हुई मां को पुकारने लगती और अन्त में बाल बिखेरकर और देवी का रूप धारण करके घर-भर को शाप देने लगती। कभी अपने कपड़े फाड़कर इधर-उधर छिपा देती और गहने जूतों के अन्दर संभाल देती। कभी अपनी बांह पर फोड़े की कल्पना करके वह दो-दो दिन उसके दर्द से कराहती रहती और फिर सहसा स्वस्थ होकर कपड़े धोने लगती और सुबह से शाम तक कपड़े ही धोती रहती।

जब मन शान्त होता, तो मुंह गोल किए वह अंगूठा चूसने लगती।

उठते-बैठते, खाते-पीते प्रकाश के सामने निर्मला के तरह-तरह के रूप आते रहते और उसका मन एक अंधे कुएं में गिरने लगता। रास्ते पर चलते हुए उसके चारों तरफ एक शून्य-सा घिर आता और वह कई बार भौंचक्का-सा सड़क के किनारे खड़ा होकर सोचने लगता कि वह घर से क्यों आया है और कहां जा रहा है। उसका किसीसे भी मिलने और कहीं भी आने-जाने को मन न होता। उसका मन जिस शून्य में भटकता रहता, उसमें कई बार उसे एक बच्चे की किलकारियां सुनाई देने लगतीं और वह बिलकुल जड़

होकर देर-देर तक एक ही जगह पर खड़ा या बैठा रहता। एक बार चलते-चलते खम्भे से टकराकर वह नाली में गिर गया। एक बार बस पर चढ़ने की कोशिश में नीचे गिर जाने से उसके कपड़े पीछे से फट गए और वह इससे बेखबर दूसरी बस में चढ़कर आगे चल दिया। उसे पता तब चला जब किसीने रास्ते में उससे कहा, "जेंटलमैन, तुम्हें क्या घर जाकर कपड़े बदल नहीं लेने चाहिए ?"

उसे लगता था जैसे वह जी न रहा हो, सिर्फ अन्दर ही अन्दर घुट रहा हो। क्या यही वह ज़िन्दगी थी जिसे पाने के लिए उसने वर्षों तक अपने से संघर्ष किया था ?

उसे क्रोध आता कि जुनेजा ने उसके साथ इस तरह का विश्वासघात क्यों किया ? उस लड़की को किसी मानसिक चिकित्सालय में भेजने की जगह उसका ब्याह क्यों कर दिया ? उसने जुनेजा को इस सम्बन्ध में पत्र लिखे, परन्तु उसकी ओर से उसे कोई उत्तर नहीं मिला। उसने जुनेजा को बुला भेजा, तो वह आया भी नहीं। वह स्वयं जुनेजा से मिलने के लिए गया, तो उसे जवाब मिला कि निर्मला अब उसकी पत्नी है—निर्मला के मायके के लोगों का उस मामले में अब कोई दखल नहीं है।

और निर्मला घर में उसी तरह हंसती और रोती रही...!

"तुम मेरे भाई से क्या पूछने के लिए गए थे ?" वह बाल बिखेरकर 'देवी' का रूप धारण किए हुए कहती, "तुम बीना की तरह मुझे भी तलाक देना चाहते हो ? किसी तीसरी को घर में लाना चाहते हो ? मगर मैं बीना नहीं हूं। वह सती नारी नहीं थी। मैं सती नारी हूं। तुम मुझे छोड़ने की बात भी मन में लाओगे, तो मैं इस घर को जलाकर भस्म कर दूंगी—सारे शहर में भूचाल ले आऊंगी। लाऊं भूचाल ?" और बांहें फैलाकर वह कहने लगती, "आ भूचाल आ...आ ! मैं सती नारी हूं, तो इस घर की ईंट से ईंट बजा दे। आ, आ, आ !"

वह उसे शान्त करने की चेष्टा करता, तो वह कहती, "तुम मुझसे दूर रहो। मेरे शरीर को हाथ मत लगाओ। मैं सती हूं। देवी हूं। साधवी हूं।

तुम मेरा सतीत्व नष्ट करना चाहते हो ? तुम खराब करना चाहते हो ? मेरा तुमसे ब्याह कब हुआ है ? मैं तो अभी तक कुंवारी हूं। छोटी-सी मासूम बच्ची हूं। संसार का कोई भी पुरुष मुझे नहीं छू सकता। मैं आध्यात्मिक जीवन जीती हूं। मुझे कोई छूकर देखे तो सही···।"

और बाल बिखेरे हुए इसी तरह बोलती हुई कभी वह घर की छत पर पहुंच जाती और कभी बाहर निकलकर घर के आसपास चक्कर काटने लगती। प्रकाश ने दो-एक बार ओंठों पर हाथ रखकर उसका मुंह बन्द कर देना चाहा, तो वह और भी ज़ोर से चिल्ला उठी, "तुम मेरा मुंह बन्द करना चाहते हो ? मेरा गला घोंटना चाहते हो ? मुझे मारना चाहते हो ? तुम्हें पता है मैं साक्षात् देवी हूं ? मेरे चारों भाई मेरे चार शेर हैं ! वे तुम्हें नोंच-नोंचकर खा जाएंगे। उन्हें पता है—उनकी बहन देवी का स्वरूप है। कोई मेरा बुरा चाहेगा, तो वे उसे उठाकर ले जाएंगे और काल-कोठरी में बन्द कर देंगे। मेरे बड़े भाई ने अभी-अभी नई कार ली है। मैं उसे चिट्ठी लिख दूं, तो वह अभी कार लेकर आ जाएगा और हाथ-पैर बांधकर तुम्हें कार में डालकर ले जाएगा। छः महीने बन्द रखेगा, फिर छोड़ेगा। तुम्हें पता नहीं वे चारों के चारों शेर कितने ज़ालिम हैं ? वे राक्षस हैं राक्षस। आदमी की बोटी-बोटी काट दें और किसीको पता भी न चले। मगर मैं उन्हें नहीं बुलाऊंगी। मैं सती नारी हूं, इसलिए अपने सत्य से ही अपनी रक्षा करूंगी···!"

सब प्रयत्नों से हारकर प्रकाश थका हुआ अपने पढ़ने के कमरे में बन्द होकर पड़ जाता, तो आधी रात तक वह साथ के कमरे में उसी तरह बोलती रहती। फिर बोलते-बोलते अचानक चुप कर जाती और थोड़ी देर बाद उसका दरवाज़ा खटखटाने लगती।

"क्या बात है ?" वह कहता।

"इस कमरे में मेरी सांस रुक रही है," निर्मला उत्तर देती, "दरवाज़ा खोलो, मुझे अस्पताल जाना है !"

"इस समय सो जाओ," वह कहता, "सुबह तुम जहां कहोगी, वहां

ले चलूंगा।''

''मैं कहती हूं दरवाज़ा खोलो, मुझे अस्पताल जाना है।'' श्रौर वह ज़ोर-ज़ोर से धक्के देकर दरवाज़ा तोड़ने लगती।

प्रकाश दरवाज़ा खोल देता, तो वह हंसती हुई उसके सामने श्रा जाती।

''तुम्हें हंसी किस बात की श्रा रही है ?'' प्रकाश कहता।

''तुम्हें लगता है मैं हंस रही हूं ?'' वह श्रौर भी ज़ोर से हंसने लगती। ''यह हंसी नहीं, रोना है, रोना !''

''तुम श्रस्पताल चलना चाहती हो ?''

''क्यों ?''

''श्रभी तुम कह रही थीं...!''

''मैं श्रस्पताल चलने के लिए कहां कह रही थी ? मैं तो कह रही थी कि मुझे उस कमरे में डर लगता है, मैं यहां तुम्हारे पास सोऊंगी।''

''देखो निर्मला, इस समय मेरा मन ठीक नहीं है। तुम थोड़ी देर में चाहे मेरे पास श्रा जाना, मगर इस समय थोड़ी देर के लिए...।''

''मैं कहती हूं, मैं श्रकेली उस कमरे में नहीं सो सकती। मेरे जैसी मासूम बच्ची क्या कभी श्रकेली सो सकती है?''

''तुम मासूस बच्ची नहीं हो, निर्मला !''

''तो तुम्हें मैं बड़ी नज़र श्राती हूं ? एक छोटी-सी बच्ची को बड़ी कहते तुम्हारे दिल को कुछ नहीं होता ? इसलिए कि तुम मुझे श्रपने पास सुलाना नहीं चाहते ? मगर मैं यहां से नहीं जाऊंगी। तुम्हें मुझे श्रपने साथ सुलाना पड़ेगा। मैं विधवा हूं जो श्रकेली सोऊंगी ? मैं सुहागिन नारी हूं। कोई सुहागिन क्या कभी श्रकेली सोती है ? मैं भांवरें लेकर तुम्हारे घर में श्राई हूं, ऐसे ही उठाकर नहीं लाई गई। देखती हूं तुम कैसे मुझे उस कमरे में भेजते हो ?'' श्रौर वह प्रकाश के पास लेटकर उससे लिपट जाती।

कुछ देर में जब उसके स्नायु शान्त हो चुकते, तो वह लगातार उसे चूमती हुई कहती, ''मेरा सुहाग ! मेरा चांद ! मेरा राजा ! मैं तुम्हें कभी

अपने से अगल रख सकती हूं ? तुम मेरे साथ एक सौ छत्तीस बरस की उम्र तक जियोगे। मुझे यह वर मिला हुआ है कि मैं एक सौ छत्तीस बरस की उम्र तक सुहागिन रहूंगी। जिसकी भी मुझसे शादी होती, वह एक सौ छत्तीस बरस की उम्र तक जीता। तुम देख लेना मेरी बात सच्ची निकलती है या नहीं। मैं सती नारी हूं और सती नारी के मुंह से निकली हुई बात कभी झूठी नहीं हो सकती...।"

"तुम सुबह मेरे साथ अस्पताल चलोगी ?" प्रकाश कहता।

"क्यों, मुझे क्या हुआ है जो मैं अस्पताल जाऊंगी ? मुझे तो आज तक सिरदर्द भी नहीं हुआ। मैं अस्पताल क्यों जाऊं ?"

एक दिन प्रकाश उसके लिए कई एक किताबें खरीद लाया। उसने सोचा था कि शायद पढ़ने से निर्मला के मन को एक दिशा मिल जाए और वह धीरे-धीरे अपने मन के अंधेरे से बाहर निकलने लगे। मगर निर्मला ने उन किताबों को देखा, तो मुंह बिचकाकर एक तरफ हटा दिया।

"ये किताबें मैं तुम्हारे पढ़ने के लिए लाया हूं," प्रकाश ने कहा।

"मेरे पढ़ने के लिए ?" निर्मला आश्चर्य के साथ बोली, "मैं इन किताबों को पढ़कर क्या करूंगी ? मैंने तो मार्क्सवाद, मनोविज्ञान और सभी कुछ चौदह साल की उम्र में पढ़ लिया था। अब इतनी बड़ी होकर मैं ये किताबें पढ़ने लगूंगी ?"

और उसके पास से उठकर अंगूठा चूसती हुई वह कमरे से बाहर चली गई।

"पापा !"

कोहरे के बादलों में भटका हुआ मन सहसा बालकनी पर लौट आया। खिलनमर्ग को जानेवाली सड़क पर बहुत-से लोग घोड़े दौड़ाते जा रहे थे—एक धुंधले चित्र की बुझी-बुझी आकृतियों जैसी। वैसे ही बुझी-बुझी आकृतियां क्लब से बाजार की तरफ आ रही थीं। बाईं ओर बर्फ से ढकी हुई पहाड़ी की एक चोटी कोहरे से बाहर निकल आई थी और जाने किधर

से आती हुई सूर्य की किरण ने उसे दीप्त कर दिया था। कोहरे में भटके हुए कुछ पक्षी उड़ते हुए उस चोटी के सामने आ गए, तो सहसा उनके पंख सुनहरे हो उठे—मगर अगले ही क्षण वे फिर धुंधलके में खो गए।

प्रकाश कुरसी से उठ खड़ा हुआ और झांककर नीचे सड़क की तरफ देखने लगा। क्या वह आवाज़ पलाश की नहीं थी ? परन्तु सड़क पर दूर-दूर तक ऐसी कोई आकृति दिखाई नहीं दे रही थी जिसे उसकी आंखें उस बच्चे के रूप में पहचान सकें। आंखों ही आंखों टूरिस्ट होटल के गेट तक जाकर वह लौट आया और गले पर हाथ रखकर जैसे निराशा की चुभन को रोके हुए फिर कुरसी पर बैठ गया। दस के बाद ग्यारह, बारह और फिर एक भी बज गया था और बच्चा नहीं आया था। क्या बच्चे के पहले जन्मदिन की घटना आज फिर दोहराई जानी थी ? मुट्ठियां बन्द किए उनपर माथा रखकर वह बालकनी पर झुक गया।

"पापा !"

उसने चौंककर सिर उठाया। वही कोहरा और वही धुंधली सुनसान सड़क। दूर घोड़ों की टापें और धीमी चाल से उस तरफ को आता हुआ एक कश्मीरी मज़दूर ! क्या वह आवाज़ उसे अपने कानों के पर्दों के अन्दर से ही सुनाई दे रही थी ?

तभी उन पर्दों के अन्दर दो नन्हे पैरों की आवाज़ भी गूंज गई और उसकी बांहों के बहुत पास ही बच्चे का स्वर किलक उठा, "पापा !" साथ ही दो नन्ही-नन्ही बांहें उसके गले से लिपट गईं और बच्चे के झंडूले बाल उसके ओंठों से छू गए।

प्रकाश ने एक बार बच्चे के शरीर को सिर से पैर तक छूकर देख लिया कि यह आकार भी उसकी कल्पना का स्वप्न तो नहीं है। विश्वास हो जाने पर कि बच्चा सचमुच उसकी गोदी में है, उसके माथे और आंखों को कसकर चूम लिया।

"तो मैं जाऊं पलाश ?" एक भूली हुई मगर परिचित आवाज़ ने प्रकाश को फिर चौंका दिया। उसने घूमकर पीछे देखा। कमरे के दरवाज़े

के बाहर बीना दाईं ओर न जाने किस चीज़ पर आंखें गड़ाए खड़ी थी।

"आप ?...आ-आइए आप...!" कहता हुआ बच्चे को बांहों में लिए प्रकाश अस्त-व्यस्त-सा कुर्सी से उठ खड़ा हुआ।

"नहीं, मैं जा रही हूं," बीना ने फिर भी उसकी तरफ नहीं देखा। "मुझे इतना बता दीजिए कि बच्चा कब तक लौटकर आएगा।"

"आप...जब कहें, तभी भेज दूंगा।" प्रकाश बालकनी की दहलीज़ लांघकर कमरे में आ गया।

"चार बजे इसे दूध पीना होता है।"

"तो चार बजे तक मैं इसे वहां पहुंचा दूंगा।"

"इसने हल्का-सा स्वेटर ही पहन रखा है। दूसरे पुलोवर की ज़रूरत तो नहीं पड़ेगी ?"

"आप दे दीजिए। ज़रूरत पड़ेगी, तो मैं इसे पहना दूंगा।"

बीना ने दहलीज़ के उस तरफ से ही पुलोवर उसकी तरफ बढ़ा दिया। उसने पुलोवर लेकर उसे शाल की तरह बच्चे को ओढ़ा दिया। "आप..." उसने बीना से कहना चाहा कि वह अन्दर आ जाए, मगर उससे कहा नहीं गया। बीना चुपचाप ज़ीने की तरफ चल दी। प्रकाश कमरे से निकल आया। ज़ीने से बीना ने फिर कहा, "देखिए इसे आइसक्रीम मत खिलाइएगा। इसका गला बहुत जल्द खराब हो जाता है।"

"अच्छा !"

बीना पल-भर रुकी रही। शायद उसे और भी कुछ कहना था। मगर फिर बिना कुछ कहे वह नीचे उतर गई। बच्चा प्रकाश की गोदी में उछलता हुआ हाथ हिलाता रहा, "ममी, टा टा ! टा टा !" प्रकाश उसे लिए बालकनी पर लौट आया, तो वह उसके गले में बांहें डालकर बोला, "पापा, मैं आइछ क्लीम जलूल थाऊंदा।"

"हां, हां, बेटे !" प्रकाश उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगा। "जो तेरे मन में आए, सो खाना। हां ?"

और कुछ देर के लिए वह अपने को, बालकनी को और यहां तक कि

बच्चे को भी भूला हुग्रा ग्राकाश को देखता रहा।

कोहरे का पर्दा धीरे-धीरे उठने लगा, तो मीलों में फैले हुए हरियाली के रंगमंच की धुंधली रेखाएं सहसा स्पष्ट हो उठीं।

वे दोनों गॉल्फ ग्राउंड पार करके क्लब की तरफ जा रहे थे। चलते हुए बच्चे ने पूछा, "पापा, ग्रादमी के दो टांगें क्यों होती हैं? चार क्यों नहीं होतीं?"

प्रकाश ने चौंककर उसकी तरफ देखा ग्रौर कहा, "ग्ररे!"

"क्यों पापा," बच्चा बोला, "तुमने ग्ररे क्यों कहा है?"

"तू इतना साफ बोल सकता है, तो ग्रब तक तुतलाकर क्यों बोल रहा था?" प्रकाश ने उसे बांहों में उठाकर एक ग्रभियुक्त की तरह ग्रपने सामने कर लिया। बच्चा खिलखिलाकर हंस पड़ा। प्रकाश को लगा कि यह वैसी ही हसी है जैसी कभी वह स्वयं हंसा करता था। बच्चे के चेहरे की रेखाग्रों से भी उसे ग्रपने बचपन के चेहरे की याद ग्राने लगी। उसे लगा जैसे एकाएक उसका तीस बरस पहले का चेहरा उसके सामने ग्रा गया हो ग्रौर वह स्वयं उस चेहरे के सामने एक ग्रभियुक्त की तरह खड़ा हो।

"ममां तो ऐछे ही ग्रच्छा लदता है," बच्चे ने कहा।

"क्यों?"

"मेले तो नहीं पता। तुम ममी छे पूछ लेना।"

"तेरी ममी तेरे को ज़ोर से हंसने से भी मना करती है?" प्रकाश को वे दिन याद ग्रा रहे थे जब उसके खिलखिलाकर हंसने पर बीना कानों पर हाथ रख लिया करती थी।

बच्चे की बांहें उसकी गरदन के पास गईं। "हां," वह बोला। "ममी तहती है ग्रच्छे बच्चे जोल छे नहीं हंछते।"

प्रकाश ने उसे बांहों से उतार दिया। बच्चा उसकी उंगली पकड़े हुए घास पर चलने लगा। "त्यों पापा," उसने पूछा। "ग्रच्छे बच्चे जोल छे त्यों नहीं हंछते?"

"हंसते हैं बेटे !" प्रकाश ने उसके सिर को सहलाते हुए कहा, "सब अच्छे बच्चे ज़ोर से हंसते हैं।"

"तो मम्मी मेले तो त्यों लोतती है ?"

"नहीं रोकती बेटे। अब वह तुझे नहीं रोकेगी। और तू तुतलाकर नहीं, ठीक से बोला कर। तेरी ममी तुझे इसके लिए भी मना नहीं करेगी। मैं उससे कह दूंगा।"

"तो तुमने पहले ममी छे त्यों नहीं तहा।"

"ऐसे नहीं, कह कि तुमने पहले ममी से क्यों नहीं कहा ?"

बच्चा फिर हंस दिया। "तो तुमने पहले ममी से क्यों नहीं कहा ?"

"पहले मुझे याद नहीं रहा। अब याद से कह दूंगा।"

कुछ देर दोनों चुपचाप चलते रहे। फिर बच्चे ने पूछा, "पापा, तुम मेरे जन्म दिन की पार्टी में क्यों नहीं आए ? ममी कहती थी तुम विलायत गए हुए थे।"

"हां बेटे, मैं विलायत गया हुआ था।"

"तो पापा, अब तुम फिर से विलायत नहीं जाना।"

"क्यों ?"

"मेरे को अच्छा नहीं लगता। विलायत जाकर तुम्हारी शकल और ही तरह की हो गई है।"

प्रकाश एक रूखी-सी हंसी हंसा और बोला, "कैसी हो गई है शकल ?"

"पता नहीं कैसी हो गई है। पहले दूसरी तरह की थी, अब दूसरी तरह की है।"

"दूसरी तरह की कैसे ?"

"पता नहीं पहले तुम्हारे बाल काले-काले थे। अब सफेद-सफेद हो गए हैं।"

"तू इतने दिन मेरे पास नहीं आया, इसलिए मेरे बाल सफेद हो गए हैं।"

बच्चा इतने ज़ोर से हंसा कि उसके कदम लड़खड़ा गए। "अरे पापा,

तुम तो विलायत गए हुए थे," उसने कहा, "मैं तुम्हारे पास कैसे आता ? मैं क्या अकेला विलायत जा सकता हूं ?"

"क्यों नहीं जा सकता ? तू इतना बड़ा तो है।"

"मैं सचमुच बड़ा हूं न पापा ?" बच्चा ताली बजाता हुआ बोला। "तुम यह बात भी ममी से कह देना। वह कहती है, मैं अभी बहुत छोटा हूं। मैं छोटा नहीं हूं न पापा ?"

"नहीं, तू छोटा कहां है ?" कहकर प्रकाश मैदान में दौड़ने लगा। "तू भागकर मुझे पकड़।"

"बच्चा अपनी छोटी-छोटी टांगें पटकता हुआ दौड़ने लगा। प्रकाश को फिर अपने बचपन की एक बात याद हो आई। तब उसे दौड़ते देखकर एक बार किसीने कहा था, "अरे यह बच्चा कैसे टांगें पटक-पटककर दौड़ता है। इसे ठीक से चलना नहीं आता है क्या ?"

बच्चे की उंगली पकड़े हुए प्रकाश क्लब के बाररूम में दाखिल हुआ, तो बारमैन अब्दुल्ला उसे देखते ही दूर से मुसकराया। "साहब के लिए दो बोतल बियर," उसने पास खड़े बैरे से कहा। "साहब आज अपने एक मेह-मान के साथ आया है।"

"बच्चे के लिए एक गिलास पानी दे दो," प्रकाश ने काउंटर के पास पहुंचकर कहा। "इसे प्यास लगी है।"

"खाली पानी ?" अब्दुल्ला बच्चे के गालों को प्यार से सहलाने लगा। "और सब दोस्तों को तो साहब बियर पिलाता है और इस बेचारे को खाली पानी ?" और ठंडे पानी की बोतल खोलकर वह गिलास में पानी डालने लगा। जब वह गिलास बच्चे के मुंह के पास ले गया, तो बच्चे ने वह उसके हाथों से ले लिया। "मैं अपने-आप पिऊंगा," उसने कहा, "मैं छोटा थोड़े ही हूं ? मैं तो बड़ा हूं।"

"अच्छा तू बड़ा है ?" अब्दुल्ला हंसा। "तब तो तुझे पानी देकर मैंने गलती की। बड़े लोगों को तो मैं बियर पिलाता हूं।"

"बियर क्या होता है ?" बच्चे ने मुंह से गिलास हटाकर पूछा।

"बियर होता नहीं, होती है।" अब्दुल्ला ने झुककर उसे चूम लिया। "तुझे पिलाऊं क्या ?"

"नहीं," कहकर बच्चे ने अपनी बांहें प्रकाश की तरफ फैला दीं। प्रकाश उसे लेकर ड्योढ़ी की तरफ चला, तो अब्दुल्ला भी उन दोनों के साथ-साथ बाहर चला आया। "किसका बच्चा है, साहब ?" उसने धीमे स्वर में पूछा।

"मेरा लड़का है," कहकर प्रकाश बच्चे को सीढ़ी से उतारने लगा।

अब्दुल्ला हंस दिया। "साहब बहुत खुशदिल आदमी है," उसने कहा।

"क्यों ?"

अब्दुल्ला हंसता हुआ सिर हिलाने लगा। "आपका भी जवाब नहीं है।"

प्रकाश गुस्से में कुछ कहने को हुआ मगर अपने को रोककर बच्चे को लिए हुए आगे चल दिया। अब्दुल्ला ड्योढ़ी में रुका हुआ पीछे से सिर हिलाता रहा। बैरा शेर मुहम्मद अन्दर से निकलकर आया, तो वह फिर खिलखिलाकर हंस दिया। "क्या बात है ? अकेला खड़ा-खड़ा कैसे हंस रहा है ?" शेर मुहम्मद ने पूछा।

"साहब का भी जवाब नहीं है," अब्दुल्ला किसी तरह हंसी पर काबू पाकर बोला।

"किस साहब का जवाब नहीं है ?"

"उस साहब का," अब्दुल्ला ने प्रकाश की तरफ इशारा किया। "उस दिन बोलता था कि इसने अभी इसी साल शादी की है और आज बोलता है कि यह पांच साल का बाबा इसका लड़का है। जब आया था, तो अकेला था और आज इसके लड़का भी हो गया !" प्रकाश ने एक बार घूमकर तीखी नज़र से उसकी तरफ देख लिया। अब्दुल्ला एक बार फिर खिलखिला उठा। "ऐसा खुशदिल आदमी मैंने आज तक नहीं देखा।"

"पापा, घास हरी क्यों होती है ? लाल क्यों नहीं होती ?" क्लब से

निकलकर प्रकाश ने बच्चे को एक घोड़ा किराये पर ले दिया था। लिनेनमर्ग को जानेवाली पगडंडी पर वह खुद उसके साथ-साथ पैदल चल रहा था। घास के रेशमी विस्तार पर कोहरे का आकाश इस तरह झुका हुआ था जैसे वासना का उन्माद उसे फिर से घिर आने के लिए प्रेरित कर रहा हो। बच्चा उत्सुक आंखों से आसपास की पहाड़ियों को और बीच से बहकर जाती हुई पानी की पतली धार को देख रहा था। कभी कुछ क्षणों के लिए वह अपने को भूला रहता, फिर किसी अज्ञात भाव से प्रेरित होकर काठी पर उछलने लगता।

"हर चीज़ का अपना रंग होता है," प्रकाश ने बच्चे की एक जांघ को हाथ से दबाए हुए कहा और कुछ देर के लिए स्वयं भी हरियाली के विस्तार में खोया रहा।

"हर चीज़ का अपना रंग क्यों होता है?"

"यह कुदरत की बात है बेटे, कुदरत ने हर चीज़ का अपना रंग बना दिया।"

"कुदरत क्या होती है?"

प्रकाश ने झुककर उसकी जांघ को चूम लिया। "कुदरत यह होती है," उसने हंसकर कहा। जांघ पर गुदगुदी होने से बच्चा भी हंसने लगा।

"तुम झूठ बोलते हो," उसने कहा।

"क्यों?"

"तुमको इसका पता नहीं है।"

"अच्छा, मुझे पता नहीं है, तो तू बता घास का रंग हरा क्यों होता है?"

"घास मिट्टी के अन्दर से पैदा होती है, इसलिए इसका रंग हरा होता है।"

"अच्छा? तुझे इसका कैसे पता चल गया?"

बच्चा उछलता हुआ लगाम को झटकने लगा। "मेरे को ममी ने बताया था।"

प्रकाश के ओंठों पर एक विकृत-सी मुसकराहट आ गई, जिसे उसने किसी तरह दबा लिया। उसे लगा जैसे आज भी उसके और वीना के बीच में एक द्वंद्व चल रहा हो और वीना उस द्वन्द्व में उसपर भारी पड़ने की चेष्टा कर रही हो। "तेरी ममी ने तुझे और क्या-क्या बता रखा है ?" वह बच्चे को थपथपाकर बोला, "यह भी बता रखा है कि आदमी के दो टांगें क्यों होती हैं और चार क्यों नहीं ?"

"हां। ममी कहती थी कि आदमी के दो टांगें इसलिए होती हैं कि वह आधा ज़मीन पर चलता है और आधा आसमान में।"

"अच्छा !" प्रकाश के होंठों पर हंसी और मन में उदासी की रेखा फैल गई।" मुझे इसका नहीं पता था," उसने कहा।

'तुमको तो कुछ भी पता नहीं है, पापा !" बच्चा बोला। "इतने बड़े होकर भी पता नहीं है !"

घास, बर्फ और आकाश के रंग दिन में कई-कई बार बदल जाते थे। बदलते हुए रंगों के साथ मन भी और से और होने लगता था। सुबह उठते ही प्रकाश बच्चे के आने की प्रतीक्षा करने लगता। बार-बार वह बालकनी पर चला जाता और टूरिस्ट होटल की तरफ आंखें किए देर-देर तक खड़ा रहता। नाश्ता करने या खाना खाने के लिए भी वह वहां से नहीं हटना चाहता था। उसे डर लगता था कि बच्चा इस बीच आकर लौट न जाए। तीन दिन में उसे साथ लिए हुए वह कितनी ही बार घूमने के लिए गया था, उसके घोड़े के पीछे-पीछे दौड़ा था और उसके साथ घास पर लोटता रहा था। कभी एक दोस्त की तरह वह उसके साथ खिलखिलाकर हंसता, कभी एक नौकर की तरह उसके हर आदेश का पालन करता। बच्चा जान-बूझकर रास्ते के कीचड़ में अपने पांव लथपथ कर लेता और फिर ओंठ बिसोरकर कहता, "पापा, पांव धो दो।" वह उसे उठाए हुए इधर-उधर पानी ढूंढ़ता फिरता। बच्चे को वह जिस कोण से भी देखता, उसी कोण से उसकी तसवीर ले लेना चाहता। जब बच्चा थक जाता और लौटकर अपनी

ममी के पास जाने का हठ करने लगता, तो वह उसे तरह-तरह के प्रलोभन देकर ग्रपने पास रोक रखना चाहता। एक बार उसने बच्चे को ग्रपनी मां के साथ दूर से ग्राते देखा था ग्रौर उसे साथ लाने के लिए उतरकर नीचे चला गया था। जब वह पास पहुंचा, तो बच्चा दौड़कर उसकी तरफ ग्राने की बजाय मां के साथ फोटोग्राफर की दूकान के ग्रन्दर चला गया। वह कुछ देर सड़क पर रुका रहा; फिर यह सोचकर ऊपर चला ग्राया कि फोटोग्राफर की दूकान से खाली होकर बच्चा ग्रपने-ग्राप ऊपर ग्रा जाएगा। मगर बालकनी पर खड़े-खड़े उसने देखा कि बच्चा दूकान से निकलकर उस तरफ ग्राने की बजाय हठ के साथ ग्रपनी मां का हाथ खींचता हुग्रा उसे वापस टूरिस्ट होटल की तरफ ले चला। उसका मन हुग्रा कि दौड़कर जाए ग्रौर बच्चे को ग्रपने साथ ले जाए, मगर कोई चीज़ उसके पैरों को जकड़े रही ग्रौर वह चुपचाप वहीं खड़ा उसे देखता रहा। शाम तक वह न जाने कितनी बार बालकनी पर ग्राया ग्रौर कितनी-कितनी देर तक खड़ा रहा। ग्राखिर उससे नहीं रहा गया, तो उसने नीचे जाकर कुछ चेरी खरीदी ग्रौर बच्चे को देने के बहाने टूरिस्ट होटल की तरफ चल दिया। ग्रभी वह टूरिस्ट होटल से कुछ दूर ही था कि बच्चा ग्रपनी मां के साथ बाहर ग्राता दिखाई दिया। मगर उसपर नज़र पड़ते ही वह वापस होटल की गैलरी में भाग गया।

प्रकाश जहां था, वहीं खड़ा रहा। उस समय पहली बार उसकी ग्रांखें बीना से मिलीं। उसे महसूस हुग्रा कि बीना का चेहरा पहले से कहीं सांवला हो गया है ग्रौर उसकी ग्रांखों के नीचे स्याह दायरे-से उभर ग्राए हैं। वह पहले से काफी दुबली भी लग रही थी। कुछ क्षण रुके रहने के बाद प्रकाश ग्रागे चला गया ग्रौर चेरी वाला लिफाफा बीना की तरफ बढ़ाकर उसने खुश्क गले से कहा, "यह मैं बच्चे के लिए लाया था।"

बीना ने लिफाफा ले लिया मगर साथ ही उसकी ग्रांखें दूसरी तरफ हट गईं। "पलाश !" उसने कुछ ग्रस्थिर ग्रावाज़ में बच्चे को पुकारकर कहा, "यह ले, तेरे पापा तेरे लिए चेरी लाए हैं।"

"मैं नहीं लेता," बच्चे ने गैलरी से कहा ग्रौर भागकर ग्रौर भी दूर

चला गया।

बीना ने एक असहाय दृष्टि बच्चे पर डाली और फिर प्रकाश की तरफ देखकर बोली, "कहता है मैं पापा से नहीं बोलूंगा। वे सुबह रुके क्यों नहीं, चले क्यों गए थे ?"

प्रकाश बीना को उत्तर न देकर गैलरी में चला गया और कुछ दूर तक बच्चे का पीछा करके उसे बांहों में उठा लाया। "मैं तुमसे नहीं बोलूंगा, कभी नहीं बोलूंगा," बच्चा अपने को छुड़ाने की चेष्टा करता हुआ कहता रहा।

"क्यों, ऐसी क्या बात है ?" प्रकाश उसे पुचकारने की चेष्टा करने लगा। "पापा से भी इस तरह नाराज़ होते हैं क्या ?"

"तुमने मेरी तसवीरें क्यों नहीं देखीं ?"

"कहां थीं तेरी तसवीरें ? मुझे तो पता ही नहीं था।"

"पता क्यों नहीं था ? तुम दूकान के बाहर से ही क्यों चले गए थे ?"

"अच्छा ला, पहले तेरी तस्वीरें देखें, फिर घूमने चलेंगे।"

"यह सुबह आपको दिखाने के लिए ही तसवीरें लेने गया था," बीना के साथ खड़ी नवयुवती ने कहा। प्रकाश इस बात को भूल ही गया था कि उन दोनों के साथ कोई और भी है।

"तसवीरें मेरे पास थोड़े ही हैं ? उसीके पास हैं।"

"सुबह फोटोग्राफर ने नेगेटिव ही दिखाए थे, पॉज़िटिव वह अब इस समय देगा," उस नवयुवती ने फिर कहा।

"तो चल, पहले दूकान पर चलकर तेरी तसवीरें ले लें। हां, देखें तो सही कैसी तसवीरें हैं !" कहकर प्रकाश फोटोग्राफर की दूकान की तरफ चलने लगा।

"मैं ममी को साथ लेकर जाऊंगा," बच्चे ने उसकी बांहों में मचलते हुए कहा।

"हां, हां, तेरी ममी भी साथ आ रही है," प्रकाश ने एक बार निरुपाय-सी दृष्टि से पीछे की तरफ देख लिया और जैसे किसी अदृश्य व्यक्ति से कहा,

"देखिए, आप भी साथ आ जाइए, नहीं तो यह रोने लगेगा।"

वीना ओंठ दांतों में दबाए हुए कुछ क्षण आंखें झपकती रही, फिर चुपचाप साथ चल दी।

फोटोग्राफर की दूकान में दाखिल होते ही बच्चा प्रकाश की बांहों से उतर गया और आदेश के स्वर में फोटोग्राफर से बोला, "मेरे पापा को मेरी तसवीरें दिखाओ।" उसके स्वर से कुछ ऐसा भी लगता था जैसे वह अपने पर लगाए गए अभियोग का उत्तर दे रहा हो। फोटोग्राफर ने तस्वीरें निकालकर मेज़ पर फैला दीं, तो बच्चा उनमें से एक-एक तसवीर चुनकर प्रकाश को दिखाने लगा। "देखो पापा, यह वहीं की तस्वीर है न जहां से तुमने कहा था कि सारा कश्मीर नज़र आता है? और यह तसवीर भी देखो पापा, जो तुमने मेरी घोड़े पर उतारी थी...।"

"दो दिन से बिलकुल साफ बोलने लगा है," बीना की सहेली ने धीरे से कहा, "कहता है पापा ने कहा है कि तू बड़ा हो गया है, इसलिए अब तुतलाकर न बोला कर।"

प्रकाश कुछ न कहकर तसवीरें देखता रहा। फिर जैसे कुछ याद हो आने से उसने दस रुपये का एक नोट निकालकर फोटोग्राफर को देते हुए कहा, "इसमें से आप अपने पैसे काट लीजिए!"

फोटोग्राफर पल-भर असमंजस में उसे देखता रहा। फिर बोला, "देखिए, पैसे तो अभी आप ही के मेरी तरफ निकलते हैं। मेम साहब ने जो बीस रुपये परसों दिए थे, उनमें से दो-एक रुपये अभी बचते होंगे। कहें, तो हिसाब कर दूं।"

"नहीं रहने दीजिए, हिसाब फिर हो जाएगा," कहकर प्रकाश ने नोट वापस जेब में रख लिया और बच्चे की उंगली पकड़े हुए दूकान से बाहर निकल आया। कुछ कदम चलने पर उसे पीछे से बीना का स्वर सुनाई दिया, "यह आपके साथ घूमने जा रहा है क्या?"

"हां!" प्रकाश ने चौंककर पीछे देख लिया। "मैं अभी थोड़ी देर में इसे वापस छोड़ जाऊंगा।"

"देखिए, आपसे एक बात कहनी थी···।"

"कहिए···।"

बीना पल-भर सोचती हुई चुप रही। फिर बोली, "इसे ऐसी कोई बात न बताइएगा जिससे यह···।"

प्रकाश को लगा जैसे कोई चीज़ उसके स्नायुओं को चीरती चली गई हो। उसकी आंखें झुक गईं और उसने धीरे से कहा, "नहीं, मैं ऐसी कोई बात इससे नहीं कहूंगा।" उसे खेद होने लगा कि एक दिन पहले जब बच्चा हठ करके कह रहा था कि 'पापा' और 'पिताजी' एक ही व्यक्ति को नहीं कहते—'पापा' पापा को कहते हैं 'पिताजी' ममी के पापा को कहते हैं—तो वह क्यों उसकी गलतफहमी दूर करने का प्रयत्न करता रहा था?

वह बच्चे के साथ अकेला क्लब की सड़क पर चलने लगा, तो कुछ दूर जाकर बच्चा सहसा रुक गया। "हम कहां जा रहे हैं, पापा ?" उसने पूछा।

"पहले क्लब चल रहे हैं," प्रकाश ने कहा, "वहां से घोड़ा लेकर आगे घूमने जाएंगे।"

"नहीं, मैं वहां उस आदमी के पास नहीं जाऊंगा।" कहकर बच्चा सहसा पीछे की तरफ चल दिया।

"किस आदमी के पास ?"

"वह जो वहां पर क्लब में था। मैं उसके हाथ से पानी भी नहीं पिऊंगा।"

"क्यों ?"

"मुझे वह आदमी अच्छा नहीं लगता।"

प्रकाश पल-भर बच्चे के चेहरे को देखता रहा, फिर वह भी वापस चल दिया। "हां, हम उस आदमी के पास नहीं चलेंगे," उसने कहा। "मुझे भी वह आदमी अच्छा नहीं लगता।

बहुत दिनों के बाद उस रात प्रकाश को गहरी नींद आई थी। एक

ऐसी विस्मृति-सी नींद जिसमें स्वप्न-दुःस्वप्न कुछ न हो। वह उसके लिए लगभग भूली हुई चीज़ हो चुकी थी। फिर भी जागने पर उसे अपने में एक ताज़गी का अनुभव नहीं हुआ—अनुभव हुआ एक खालीपन का ही। जैसे कि कोई चीज़ उसके अन्दर उफनती रही हो, जो गहरी नींद सो लेने से चुक गई हो। रोज़ की तरह उठकर वह बालकनी पर गया। देखा आकाश साफ है। रात को सोया था, तो वर्षा हो रही थी। परन्तु उस धुले-निखरे हुए आकाश को देखकर आभास तक नहीं होता था कि कभी वहां बादलों का अस्तित्व भी था। सामने की पहाड़ियां सुबह की धूप में नहाकर बहुत उजली हो उठी थीं।

प्रकाश कुछ देर वहां खड़ा रहा— शान्तिरहित और विचारहीन। फिर सहसा दूर के छोर में उठते हुए बादल की तरह उसे कोई चीज़ अपने में उमड़ती हुई प्रतीत हुई और उसका मन एक अज्ञात आशंका से सिहर गया। तो क्या...?

वह बालकनी से हट आया। बिछली शाम को बच्चे ने बताया था कि उसकी ममी कह रही है कि दिन साफ हुआ, तो सुबह वे लोग वहां से चले जाएंगे। रात को जिस तरह वर्षा हो रही थी उससे सुबह तक आकाश के साफ होने की कोई सम्भावना नहीं लगती थी। इसलिए सोने के समय उसका मन इस ओर से लगभग निश्चिन्त था। परन्तु रात-रात में आकाश का दृश्यपट बिलकुल बदल गया था। तो क्या सचमुच आज ही उन लोगों को वहां से चले जाना था?

उसने कमरे के बिखरे हुए सामान को देखा—दो-चार इनी-गिनी चीज़ें ही थीं। चाहा कि उन्हें सहेज दे। मगर किसी चीज़ को रखने-उठाने को मन नहीं हुआ। बिस्तर को देखा जिसमें रोज़ से बहुत कम सलवटें पड़ी थीं। लगा जैसे रात की गहरी नींद के लिए वह बिस्तर ही दोषी हो और गहरी नींद ही—बरसते हुए आकाश के साफ हो जाने के लिए! उसने बिस्तर की चादर को हिला दिया कि उसमें और सलवटें पड़ जाएं मगर उससे चादर में जो दो-एक सलवटें थीं, वे भी निकल गईं। वह फिर से एक

नींद लेने के इरादे से बिस्तर पर लेट गया।

शरीर में थकान बिलकुल नहीं थी, इसलिए नींद नहीं ग्राई। कुछ देर करवटें लेने के बाद वह नहाने-धोने के लिए उठ गया। लड़खड़ाते कदमों से सुबह दोपहर की तरफ बढ़ने लगी, तो उसके मन को कुछ सहारा मिलने लगा। वह चाहने लगा कि इसी तरह शाम हो जाए ग्रौर फिर रात— ग्रौर बच्चा उससे विदा लेने के लिए न ग्राए। परन्तु इसी तरह जब दोपहर भी ढलने को ग्रा गई ग्रौर बच्चा नहीं ग्राया, तो उसके मन में धीरे-धीरे एक ग्रौर ही ग्राशंका सिर उठाने लगी। वह सोचने लगा कि दिन साफ होने से उसकी ममी कहीं सुबह-सुबह ही तो उसे लेकर वहां से नहीं चली गई?

वह बार-बार बालकनी पर जाता—एक धड़कती हुई ग्राशा ग्रौर ग्राशंका लिए हुए। बार-बार टूरिस्ट होटल की तरफ़ जानेवाले रास्ते पर नज़र डालता ग्रौर एक ग्रनिश्चित-सी ग्रनुभूति लिए हुए कमरे में लौट ग्राता। उसकी धमनियों में लहू का हर करण, मस्तिष्क में चेतना का हर बिन्दु उत्कंठा से व्याकुल था। उसने कुछ खाया नहीं था, इसलिए भूख भी उसे परेशान कर रही थी। कुछ देर के बाद कमरा बन्द करके वह खाना खाने चला गया। मोटे-मोटे कौर निगलकर उसने किसी तरह दो रोटियां गले से उतारीं ग्रौर तुरन्त वापस चल पड़ा। कुछ क्षणों के लिए भी कमरे से बाहर ग्रौर बालकनी से दूर रहना उसे एक ग्रपराध की तरह लग रहा था। लौटते हुए उसने सोचा कि उसे खुद टूरिस्ट होटल में जाकर पता कर लेना चाहिए कि वे लोग यहीं हैं या चले गए हैं। मगर सड़क की चढ़ाई चढ़ते हुए उसने दूर से ही देखा—बीना बच्चे के साथ उसकी बालकनी के नीचे खड़ी थी। वह हांफता हुग्रा तेज-तेज़ चलने लगा।

वह पास जा पहुंचा, तो भी बच्चे ने उसके तरफ नहीं देखा। वह ग्रपनी मां का हाथ खींचता हुग्रा किसी बात के लिए हठ कर रहा था। प्रकाश ने उसकी बांह को हाथ में ले लिया, तो वह उससे बांह छुड़ाने का प्रयत्न करने लगा। "मैं तुम्हारे घर नहीं जाऊंगा," उसने लगभग चीखकर कहा। प्रकाश

अचकचा गया और मूढ़-सा उसकी तरफ देखता रहा ।

"क्यों, तू मुझसे नाराज़ है क्या ?" उसने पूछा ।

"ममी मेरे साथ क्यों नहीं चलती ?" बच्चा फिर उसी तरह चिल्लाया ।

प्रकाश और बीना की आंखें एक-दूसरे की तरफ उठने को हुईं, मगर पूरी तरह नहीं उठ पाईं । प्रकाश ने बच्चे की बांह फिर थाम ली और बीना से कहा, "आप भी साथ आ जाइए न !"

"इसे आज न जाने क्या हुआ है ?" बीना झुंझलाहट के साथ बोली । "सुबह से ही तंग कर रहा है !"

"इस वक्त यह आपके बिना ऊपर नहीं जाएगा," प्रकाश ने कहा, "आप साथ आ क्यों नहीं जातीं ?"

"चल, मैं तुझे ज़ीने तक पहुंचा देती हूं," बीना उसे उत्तर न देकर बच्चे से बोली, "ऊपर से जल्दी ही लौट आना । घोड़ेवाले कितनी देर से तैयार खड़े हैं ।"

प्रकाश को अपने अन्दर एक नश्तर-सा चुभता महसूस हुआ । मगर जल्द ही उसने अपने को संभाल लिया । "आप लोग आज ही जा रहे हैं क्या ?" वह किसी तरह कठिनाई से पूछ सका ।

"जी हां," बीना दूसरी तरफ देखती रही । "जाना तो सुबह-सुबह ही था मगर इसके हठ की वजह से इतनी देर हो गई है । अब भी यह···।" और वह बात बीच में ही छोड़कर उसने बच्चे से कहा, "तो चल तुझे ज़ीने तक पहुंचा दूं ।"

बच्चा प्रकाश के हाथ से बांह छुड़ाकर दूर भाग गया । "मैं नहीं जाऊंगा," उसने कहा ।

"अच्छा आ जा," बीना बोली, "मैं तुझे ज़ीने के ऊपर तक छोड़ आऊंगी—उस दिन की तरह ।"

"मैं नहीं जाऊंगा," और बच्चा कुछ कदम और भी दूर चला गया ।

"आप साथ आ क्यों नहीं जातीं ? यह इस तरह अपना हठ नहीं छोड़ेगा," प्रकाश ने कहा । बीना ने आधे क्षण के लिए उसकी तरफ देखा ।

उस दृष्टि में आक्रोश के अतिरिक्त न जाने क्या-क्या भाव था ! परन्तु आधे क्षण में ही वह भाव धुल गया और बीना ने अपने को सहेज लिया। उसके चेहरे पर एक तरह की दृढ़ता आ गई और उसने बच्चे के पास जाकर उसे उठा लिया। "तो चल मैं तेरे साथ चलती हूं," उसने कहा।

बच्चे का रुआंसा भाव एक क्षण में ही बदल गया और उसने हंसते हुए अपनी मां के गले में बांहें डाल दीं। प्रकाश ने धीरे से कहा, "आइए" और उन दोनों के आगे-आगे चलने लगा।

ऊपर कमरे में पहुंचकर बीना ने बच्चे को नीचे उतार दिया और कहा, "ले, अब मैं जा रही हूं।"

"नहीं," बच्चे ने उसका हाथ पकड़ लिया।' तुम भी यहां बैठो।"

"बैठिए," प्रकाश ने कुरसी पर पड़ी हुई दो-एक चीज़ें जल्दी से उठा दीं और कुरसी बीना की तरफ बढ़ा दी। बीना कुरसी पर न बैठकर चारपाई के कोने पर बैठ गई। बच्चे का ध्यान सहसा न जाने किस चीज़ ने खींच-लिया। वह उन दोनों को छोड़कर बालकनी में भाग गया और वहां से उचक-कर सड़क की तरफ देखने लगा।

प्रकाश कुरसी की पीठ पर हाथ रखे जैसे खड़ा था, वैसे ही खड़ा रहा। बीना चारपाई के कोने पर और भी सिमटकर दीवार की तरफ देखने लगी। सहसा असावधानी के एक क्षण में उनकी आंखें मिल गईं, तो बीना ने जैसे पूरी शक्ति संचित करके कहा, "कल इसकी जेब में कुछ रुपये मिले थे। आपने रखे थे ?"

प्रकाश सहसा ऐसे हो गया जैसे किसीने उसे पकड़कर झकझोर दिया हो। "हां," उसने लड़खड़ाते हुए स्वर में कहा, "सोचा था कि उनसे यह कोई चीज़···कोई चीज़ बनवा लेगा।"

बीना पल-भर चुप रही। फिर बोली, "क्या चीज़ बनवानी होगी ?"

"कोई भी चीज बनवा दीजिएगा। कोई अच्छा-सा ओवरकोट या···।"

कुछ देर फिर चुप्पी रही। फिर बीना बोली, "कैसा कोट बनवाना

होगा ?''

''कैसा भी बनवा दीजिएगा। जैसा इसे अच्छा लगे, या···या जैसा आप ठीक समझें।''

''कोई खास कपड़ा लेना हो, तो बता दीजिए।''

''नहीं, खास कोई नहीं। कैसा भी ले लीजिएगा।''

''कोई खास रंग···?''

''नहीं···हां···अगर नीले रंग का हो, तो ज़्यादा अच्छा रहेगा।''

बच्चा उछलता हुआ बालकनी से लौट आया और बीना का हाथ पकड़कर बोला, ''अब चलो।''

''पापा से तूने प्यार तो किया ही नहीं और आते ही चल भी दिया?'' प्रकाश ने उसे बांहों में ले लिया। बच्चे ने उसके ओंठों से ओंठ मिलाकर एक बार अच्छी तरह उसे चूम लिया और फिर झट से उसकी बाहों से उतरकर मां से बोला, ''अब चलो।''

बीना चारपाई से उठ खड़ी हुई। बच्चा उसका हाथ पकड़कर उसे बाहर की तरफ खींचने लगा। ''तलो न ममी देल हो लही है,'' वह फिर तुतलाने लगा और बीना को साथ लिए हुए दहलीज़ पार कर गया।

''तू जाकर पापा को चिट्ठी लिखेगा न ?'' प्रकाश ने पीछे से पूछा।

''लिथूंदा।'' मगर उसने पीछे मुड़कर नहीं देखा। पीछे मुड़कर देखा एक बार बीना ने, और जल्दी से आंखें हटा लीं। उसकी आंखों के कोरों में अटके हुए आंसू उसके गालों पर बह आए थे। ''तूने पापा को टा-टा नहीं किया,'' उसने बच्चे के कन्धे पर हाथ रखे हुए कहा। आंखों की तरह उसका स्वर भी भीगा हुआ था।

''टा-टा पापा !'' बच्चे ने बिना पीछे की तरफ देखे हाथ हिला दिया और ज़ीने से उतरने लगा। आधे ज़ीने से फिर उसकी आवाज़ सुनाई दी, ''पापा का घल अच्छा नहीं है ममी, हमाले वाला घल अच्छा है। पापा के घल में तो कुछ भी छामान ही नहीं है···!''

''तू चुप करेगा कि नहीं ?'' बीना ने उसे झिड़क दिया। ''जो मुंह में

आता है बोलता जाता है।"

"नहीं तुप कलूंगा, नहीं कलूंगा तुप···," बच्चे का स्वर फिर रुआंसा हो गया और वह तेज़-तेज़ कदमों से नीचे उतरने लगा। "पापा का घल गन्दा ! पापा का घल थू···!"

रात होते-होते आकाश फिर घिर आया। प्रकाश क्लब के बाररूम में बैठा एक के बाद एक बियर की बोतलें खाली करता रहा। बारमैन अब्दुल्ला लोगों के लिए रम और व्हिस्की के पेग ढालता हुआ बार-बार कनखियों से उसकी तरफ देख लेता था। इतने दिनों में पहली बार वह प्रकाश को इस तरह पीते देख रहा था। "आज लगता है इस साहब ने कहीं से बहुत माल मारा है," उसने एक बार धीमे स्वर में शेर मुहम्मद से कहा। "आगे कभी एक बोतल से ज्यादा नहीं पीता और आज चार-चार बोतलें पीकर भी बस करने का नाम नहीं ले रहा।"

"शेर मुहम्मद ने सिर्फ मुंह बिचका दिया और अपने काम में लगा रहा।

प्रकाश की आंखें अब्दुल्ला से मिलीं, तो अब्दुल्ला मुस्करा दिया। प्रकाश कुछ क्षण इस तरह उसे देखता रहा जैसे वह इन्सान न होकर एक धुंधला-सा साया हो और अपने सामने का गिलास परे सरकाकर उठ खड़ा हुआ। काउंटर के पास जाकर उसने दस-दस के दो नोट निकालकर अब्दुल्ला के सामने रख दिए। अब्दुल्ला बाकी पैसे गिनता हुआ खुशामदी स्वर में बोला, "आज साहब बहुत खुश नज़र आता है।"

"अच्छा ?" प्रकाश इस तरह उसे देखता रहा जैसे उसके देखते-देखते वह साया धुंधला होकर बादलों में गुम होता जा रहा हो। जब वह चलने को हुआ, तो अब्दुल्ला ने पहले सलाम किया और फिर पूछ लिया, "क्यों साहब, वह कौन था उस दिन आपके साथ ? किसका लड़का था वह ?"

प्रकाश को लगा जैसे वह साया अब बिलकुल गुम हो गया हो और उसके सामने सिर्फ बादल ही बादल घिरा रह गया हो। उसने जैसे दूर

बादल के गर्भ में देखने की चेष्टा करते हुए कहा, "कौन लड़का ?"

अब्दुल्ला पल-भर के लिए भौंचक्का-सा हो रहा, फिर सहसा खिल-खिलाकर हंस पड़ा। "तब तो मैंने शेर मुहम्मद से ठीक ही कहा था...," वह बोला।

"क्या कहा था ?"

"कि हमारा साहब तबीयत का बादशाह है। जब चाहे जिसके लड़के को अपना लड़का बना ले और जब चाहे...यहां गुलमर्ग में तो यह सब चलता है ! आप जैसा ही हमारा एक और साहब है..."

प्रकाश को लगा कि बादल बीच से फट गया है और चीलों की कई-एक पंक्तियां उस दर्रे में से होकर दूर-दूर उड़ी जा रही हैं—वह चाह रहा है कि दर्रा किसी तरह भर जाए, जिससे वे पंक्तियां आंखों से ओझल हो जाएं ; मगर दर्रे का मुहाना और-और बड़ा होता जा रहा है। उसके गले से एक अस्पष्ट-सी आवाज़ निकल पड़ी और वह अब्दुल्ला की तरफ से आंखें हटाकर चुपचाप वहां से चल दिया।

"बस एक बाज़ी...!" अपनी आवाज़ की गूंज प्रकाश को स्वयं बहुत अस्वाभाविक लगी। उसके साथियों ने हल्का-सा विरोध किया मगर पत्ते एक बार फिर बंटने लगे।

कार्ड-रूम तब तक लगभग खाली हो चुका था। कुछ देर पहले तक वहां काफी चहल-पहल थी—नाज़ुक हाथों से पत्तों की नाज़ुक चालें चल रही थीं और शीशे के नाज़ुक गिलास रखे और उठाए जा रहे थे। मगर अब आसपास चार-चार खाली कुरसियों से घिरी हुई चौकोर मेज़ें बहुत अकेली और उदास लग रही थीं। पालिश की चमक के बावजूद उनमें एक वीरानगी आ गई थी। सामने की दीवार में बुखारी की आग भी कब की ठण्डी पड़ चुकी थी। जाली के उस तरफ कुछ बुझे-अधबुझे अंगारे ही रह गए थे—सर्दी से ठिठुरकर स्याह पड़ते और राख में गुम होते हुए।

उसने पत्ते उठा लिए। हर बार की तरह इस बार भी सब बेमेल पत्ते

थे—ऐसी बाज़ी कि आदमी फेंककर अलग हो जाए। मगर उसीके अनुरोध से पत्ते बंटे थे, इसलिए वह उन्हें फेंक नहीं सकता था। उसने नीचे से पत्ता उठाया, तो वह और भी बेमेल था। हाथ से कोई भी पत्ता चलकर वह उन पत्तों का मेल बैठाने का प्रयत्न करने लगा।

बाहर मूसलाधार वर्षा हो रही थी—पिछली रात जैसी वर्षा हुई थी, उससे भी तेज़। खिड़की के शीशों से टकराकती हुई बूंदें बार-बार एक चुनौती लिए हुए आती थीं, परन्तु सहसा बेबस होकर नीचे ढुलक जाती थीं। उन बहती हुई धारों को देखकर लगता था जैसे कई एक चेहरे खिड़की के साथ सटकर अन्दर झांक रहे हों और लगातार रो रहे हों। किसी क्षण हवा से किवाड़ हिल जाते थे तो वे चेहरे जैसे हिचकियां लेने लगते थे। हिचकियां बन्द होने पर वे गुस्से से घूरने लगते। उन चेहरों के पीछे अंधेरा छटपटाता हुआ दम तोड़ रहा था।

"डिक्लेयर !" प्रकाश चौंक गया। उसके हाथ में पत्ते अभी उसी तरह थे—इस बार भी उसे फुल हैंड ही देना था। पत्ते फेंककर उसने पीछे टेक लगा ली और फिर खिड़की से सटे हुए चेहरों को देखने लगा।

"तुम बहुत ही खुशकिस्मत हो प्रकाश, सचमुच हममें सबसे खुशकिस्मत आदमी तुम्हीं हो ···।" प्रकाश की आंखें खिड़की से हट आईं। पत्ते उठाकर रख दिए गए थे और मेज़ पर हार-जीत का हिसाब किया जा रहा था। हिसाब करनेवाला व्यक्ति ही उससे कह रहा था, "कहते हैं न कि जो पत्तों में बदकिस्मत हो, वह ज़िन्दगी में खुशकिस्मत होता है! अब देख लो, सबसे ज्यादा तुम्हीं हारे हो इसलिए यह मानना पड़ेगा कि सबसे खुशकिस्मत आदमी तुम्हीं हो।"

प्रकाश ने अपने नाम के आगे लिखे गए जोड़ को देखा। पल-भर के लिए उसकी धड़कन बढ़ गई कि उसकी जेब में उतने पैसे हैं भी या नहीं। जेब में हाथ डालकर उसने पूरी जेब खाली कर ली। लगभग हारी हुई रकम के बराबर ही पैसे जेब में थे। वह रकम अदा कर देने के बाद दो-एक छोटे-छोटे सिक्के ही पास में बच रहे—और उनके साथ वह मुचड़ा हुआ

अन्तर्देशीय पत्र जो शाम की डाक से आया था और जिसे जेब में रखकर वह क्लब चला आया था। पत्र निर्मला का था जो उसने अब तक खोलकर पढ़ा नहीं था। जेब में पड़े-पड़े वह पत्र काफी मुचड़ गया था। निर्मला के अक्षरों की बनावट पर नज़र पड़ते ही निर्मला के कई-कई उन्मादी चेहरे उसके सामने आने लगे—उसके हाथ का लिखा एक-एक अक्षर जैसे एक-एक चेहरा हो! घर से चलने के दिन भी वह उसके कितने-कितने चेहरे देखकर आया था! एक चेहरा था जो हंस रहा था, एक था जो रो रहा था; एक बल खोले हुए ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहा था और धमकियां दे रहा था और एक···एक चेहरा भूखी आंखों से उसके शरीर को निगलना चाह रहा था! उसने रोज़ के इस्तेमाल का कुछ सामान साथ लाना चाहा था, तो एक चेहरा उसके साथ मल्लयुद्ध करने पर उतारू हो गया था।

"निर्मला!" उसने हतप्रभ होकर कहा था। "तुम्हें इस तरह गुत्थम-गुत्था होते शरम नहीं आती?"

"क्या?" निर्मला हंस दी थी। "मरद और औरत रात-दिन गुत्थम-गुत्था नहीं होते क्या?"

वह बिना एक कमीज़ तक साथ लिए घर से चला आया था। बनियान, तौलिया, कंघा, कमीज़ सब कुछ उसने आते हुए रास्ते में खरीदा था—यह सोचने के लिए वह नहीं रुका था कि उसके पास जो चार-पांच सौ रुपये की पूंजी है, वह इस तरह कितने दिन चलेगी! बिछाने-ओढ़ने का सामान भी उसे वहां पहुंचकर ही किराये पर लेना पड़ा था···!

और वहां आने के चौथे-पांचवें रोज़ से ही निर्मला के पत्र आने लगे थे—वह उसके किसी मित्र के यहां जाकर उसका पता लगा आई थी। उन पत्रों में भी निर्मला के वे सब चेहरे ज्यों के त्यों विद्यमान रहते थे···वह सख्त बीमार है और अस्पताल जा रही है···उसके भाई पुलिस में खबर करने जा रहे हैं कि उनका बहनोई लापता हो गया है···वह रात-दिन बेचैन रहती है और दीवारों से पूछती है कि उसका "चांद कहां है"···वह जोगिन का वेश धारण करके जंगलों में जा रही है···दो दिन के अन्दर-अन्दर पत्र

का उत्तर न आया, तो उसके भाई उसे हवाई जहाज़ में बिठाकर वहां भेज देंगे···उसके छोटे भाई ने उसे बहुत पीटा है कि वह अपने 'खसम' के पास क्यों नहीं जाती···!

अन्तर्देशीय पत्र प्रकाश की उंगलियों में मसल गया था। उसे फिर से जेब में रखकर वह उठ खड़ा हुआ। बाहर ड्योढ़ी में कुछ लोग जमा थे—कि बारिश रुके, तो वहां से जाएं। उनके बीच से होकर वह बाहर निकल आया।

"आप इस बारिश में जा रहे हैं ?" किसीने उससे पूछा। उसने चुपचाप सिर हिला दिया और कच्चे रास्ते पर चलने लगा। सामने केवल 'नीडोज़ होटल' की बत्तियां जगमगा रही थीं—बाकी सब तरफ दायें-बायें और ऊपर-नीचे अंधेरा ही अंधेरा था। क्लब के अहाते से निकलकर वह सड़क पर पहुंचा, तो पानी और भी तेज़ हो गया।

उसका सिर पूरा भीग गया था और पानी की धारें गले से होकर कपड़ों के अन्दर जा रही थीं। हाथ-पैर सुन्न हो रहे थे मगर आंखों में उसे एक जलन-सी महसूस हो रही थी। कीचड़ से लथपथ पैर रास्ते में आवाज़ करते थे तो उसके शरीर में कोई चीज़ झनझना उठती थी। सहसा एक नई सिहरन उसके शरीर में भर गई। उसे लगा कि वह सड़क पर अकेला नहीं है—कोई और भी अपने नन्हे-नन्हे पांव पटकता हुआ उसके साथ चल रहा है। रास्ते की नाली पर बना हुआ लकड़ी का छोटा-सा पुल पार करते हुए उसने घूमकर उस तरफ देखा। उसके साथ चल रहा था एक भीगा हुआ कुत्ता—कान झटकता हुआ, खामोश और अन्तर्मुख !



# आर्द्रा

बचन को थोड़ी ऊंघ आ गई थी, पर खटका सुनकर वह चौंक गई। इरावती ड्योढ़ी का दरवाज़ा खोल रही थी। चपरासी गरोशन आ गया था। इसका मतलब था कि छः बज चुके होंगे। बचन के शरीर में ऊब और झुंझलाहट की झुरझुरी भर गई। बिन्नी न रात को घर आया था, न सुबह से अब तक उसने दर्शन दिए थे। इस लड़के की वजह से ही वह परदेस में पड़ी हुई थी, जहां न कोई उसकी ज़बान समझता था, न वह किसीकी ज़बान समझती थी। एक इरावती थी, जिससे वह टूटी-फूटी हिन्दी बोल लेती थी, हालांकि उसकी पंजाबी हिन्दी और इरावती की कोंकणी हिन्दी में ज़मीन-आसमान का अन्तर था। जब इरावती भी उसकी सीधे-सादे शब्दों में कही हुई साधारण-सी बात को न समझ पाती, तो वह बुरी तरह अपनी विवशता के खेद से दब जाती थी। और इस लड़के को रत्ती-भर चिन्ता नहीं थी कि मां किस मुश्किल से दिन काटती है और किस बेसब्री से मेरी इंतज़ार करती है। आए तो घर आ गए, नहीं तो जहां हुआ पड़ रहे।

एक मादा सूअर अपने छः बच्चों के साथ, जो अभी नौ-नौ इंच से ऊंचे नहीं हुए थे, कुएं की तरफ से आ रही थी। तूत के बुड्ढे पेड़ के पास पहुंचकर उसने हुंफ्-हुंफ् करते हुए दो-तीन बार नाली को सूंघा और फिर पेड़ के नीचे कीचड़ में लोटने लगी। उसके नन्हे आत्मज उसके उठने की राह देखते हुए वहीं आसपास मंडराने लगे।

दिन-भर गली में यही सिलसिला चलता था। आसपास सभी घरों में

सूअर पाल रखे थे। बस्ती में लोगों के दो ही धन्धे थे—सूअर पालना और नाजायज़ शराब निकालना। ये दोनों चीज़ें उनके दैनिक आहार में सम्मिलित थीं। बस्ती सैंटाक्रुज़ के हवाई अड्डे से केवल आधा मील के फासले पर थी, पर पुलिस की आंख वहां नहीं पहुंचती थी। मोनिका का बाप जेकब गली में ही भट्ठी लगाता था। वह गली का सबसे बड़ा पियक्कड़ माना जाता था और अक्सर पीकर गली में गाता हुआ चक्कर लगाया करता था, 'ओ दैट आई हैड विंग्ज़ ऑफ़ ऐंजल्स, हियर टु स्प्रेड ऐण्ड हैवनवर्ड फ़्लाऽऽइ···।'

उस समय वह रोज़ की तरह कुएं के मोड़ के पास से लड़खड़ाता आ रहा था। उसके शब्द बचन की समझ के बाहर थे, परन्तु उसका स्वर उसके हृदय में दहशत पैदा करने के लिए काफी था, 'ओ दैट आई हैड विंग्ज़ ऑफ़ ऐंजल्स, हियर टु स्प्रेड ऐण्ड हैवनवर्ड फ़्लाऽऽई! आई वुड सीक द गेट्स ऑफ़ सायन, फ़ार बियांड द स्टाऽरी स्काऽऽइ! होइ-हो! हो-हो-होऽऽ! ओ दैट आई हैड विंग्ज़ ऑफ ऐंजल्स···'

उसका चौड़ा चौकोर चेहरा वैसे ही भयानक था, अपने ढीले-ढाले काले सूट में वह और भयानक दिखाई देता था। चेचक के दागों और झुर्रियों से भरा उसका चेहरा दीमक-खाई लकड़ी की याद दिलाता था। दूर से ही उस आदमी की आवाज़ सुनकर बचन का दिल धड़कने लगता था और वह अपना दरवाज़ा बन्द कर लेती थी। उसने कितनी ही बार बिन्नी से कहा था कि वह उस बस्ती से मकान बदल ले, पर वह हर बार यह कहकर टाल देता था कि बम्बई की ओर किसी बस्ती में बीस रुपये महीने में उतना अच्छा मकान नहीं मिल सकता। बचन डर के मारे बिन्नी के आने तक लालटेन की लौ भी ज़्यादा ऊंची नहीं करती थी। अंधेरा बहुत बोझिल प्रतीत होता था, पर वह मन मारे बैठी रहती थी।

लालटेन की चिमनी नीचे से आधी काली हो रही थी। बचन को उसे साफ करने का उत्साह नहीं हुआ। अंधेरा होने लगा तो उसने जैसे कर्तव्य पूरा करने के लिए उसे जला दिया और अज्ञात देवता के आगे हाथ जोड़ने की प्रक्रिया पूरी करके घुटनों पर बांहें रखकर बैठ रही। सामने मोढ़े के नीचे

लाली का कार्ड रखा था। वह उन अक्षरों की बनावट जानती थी, पर हज़ार आंखें गड़ाकर भी उनका अर्थ नहीं जान सकती थी। बिन्नी के सिवा हिन्दी की चिट्ठी पढ़नेवाला वहां कोई न था। बिन्नी से चिट्ठी पढ़वाकर भी उसे सुख नहीं मिलता था। वह लाली की चिट्ठी इस तरह पढ़कर सुनाता था, जैसे वह उसके बड़े भाई की चिट्ठी न होकर गली के किसी गैर आदमी के नाम आई किसी नावाकिफ आदमी की चिट्ठी हो। दो मिनट में वह पहली सतर से लेकर आखिरी सतर तक सारी चिट्ठी बांच देता था और फिर उसे कोने में फेंककर अपनी इधर-उधर की हांकने लगता था। हर बार उससे चिट्ठी सुनकर वह कुढ़ जाती थी, पर बिन्नी उसे नाराज़ देखता तो तरह-तरह की बातें बनाकर उसे खुश कर लिया करता था।

उसे खुश होते देर नहीं लगती थी। बिन्नी इतना बड़ा होकर भी जब-तब उससे बच्चों की तरह लाड़ करने लगता था। कभी उसकी गोदी में सिर रखकर लेट जाता, और कभी उसके घुटनों से गाल सहलाने लगता। ऐसे क्षणों में उसका हृदय पिघल जाता और वह उसके बालों पर हाथ फेरती हुई उसे छाती से लगा लेती।

"मां, तेरा छोटा लड़का कपूत है न ?" बिन्नी कहता।

"हा-हा" वह हटकने के स्वर में कहती, "तू कपूत है ? तू मेरे चन्ना···?" और वह उसका माथा चूम लेती।

लेकिन अक्सर वह बहुत तंग पड़ जाती थी। अनेक रातें ऐसी गुज़रती थीं, जब वह घर आता ही नहीं था। अंधेरे घर की छत उसे दबाने को आती थी और वह सारी रात करवटें बदलती रहती थी। ज़रा आंख झप-कने पर बुरे-बुरे सपने दिखाई देने लगते थे। इसलिए कई बार वह प्रयत्न करके आंखें खुली रखती थी।

और वह आता था तो अपने में ही उलझा हुआ और व्यस्त-सा। वह समझ नहीं पाती थी कि उसे किस चीज़ की व्यस्तता रहती है। जहां तक कमाने का सवाल था, वह महीने में कठिनता से साठ-सत्तर रुपये घर लाता था। कभी दस रुपये अधिक ले आता, तो साथ अपनी पचास मांगें उसके

सामने रख देता—"इस बार मां, दो कमीज़ें सिल जाएं और एक बढ़िया-सा जूता आ जाए।" उसकी बातों से बचन के ओंठों पर रूखी-सी मुसकराहट आ जाती थी। दस रुपये में उसे घर-भर का सामान चाहिए! और जब वह साठ से भी कम रुपये लाता, तो महीने-भर की बड़ी आसान योजना उसके सामने प्रस्तुत कर देता—"दूध-सब्ज़ी का नागा, दाल, प्याज़, खुश्क फुलके और बस!"

वह जानती थी कि ये रुपये भी वह ट्यूशन-ऊशन करके ले आता है, वरना सही अर्थ में वह बेकार है। उसके दिल में बड़े-बड़े मनसूबे अवश्य थे और उनका बखान करते समय वह छोटा-मोटा भाषण दे डालता था। परन्तु उन मनसूबों को पूरा करने के लिए जिस दुनिया की ज़रूरत थी, वह दुनिया अभी बननी रहती थी, और वह जोश से उंगलियां नचा-नचाकर कहा करता था कि मां, वह दुनिया बन जाएगी तो तुझे पता चलेगा कि तेरा नालायक बेटा कितना लायक है!

"चुप रह खसम रखना!" वह प्रशंसा की दृष्टि से उसे देखती हुई कहती, "बड़ा लायक एक तू ही है।"

"मां, मेरी लियाकत मेरे पेट में बन्द है!" वह हंसता। "जिस तरह हिरन के पेट में कस्तूरी बन्द होती है न, उसी तरह। जिस दिन वह खुलकर सामने आएगी, उस दिन तू अचम्भे से देखती रह जाएगी।"

उसे उसकी बातें सुनकर गर्व होता था। पर कई बार वह बहुत गुमसुम और बन्द-बन्द-सा हो रहता था, तो उसे उलझन होने लगती थी।

और उसके साथ उसके अजीब-अजीब दोस्त घर आया करते थे। उन लोगों का शायद कोई ठौर-ठिकाना नहीं था, क्योंकि वे आते तो दो-दो दिन वहीं पड़े रहते थे, और खाने-पीने में निहायत बेतकल्लुफी से काम लेते थे। चूल्हे से उतरती हुई रोटी के लिए जब वे आपस में छीना-झपटी करने लगते तो उसे आन्तरिक प्रसन्नता का अनुभव होता था। परन्तु प्रायः उसकी दाल की पतीली खाली हो जाती थी, और यह देखकर कि उन लोगों की खाने की कामना अभी बनी हुई है, उसे घर का अभाव अपना अपराध प्रतीत होता

था। ऐसे समय उसकी आंखों में नमी छा जाती और वह ध्यान बंटाने के लिए अन्य काम करने लगती। वे लोग रूसी नमकीन रोटियों की फरमाइश करते तो वह चुपचाप बना देती, परन्तु उन्हें खिलाने का उसका सारा उत्साह समाप्त हो चुका होता।

और उन लोगों के बहस-मुबाहिसे कभी शान्त नहीं होते थे। वे सब ज़ोर-ज़ोर से बोलते थे और इस तरह आपस में उलझ जाते थे, जैसे उनकी बहस पर ही धरती और ईश्वर की सत्ता का दारोमदार हो। कई बार वे इतने गरम हो जाते थे कि लगता था अभी एक-दूसरे को नोंच डालेंगे मगर सहसा उस उत्तेजना के बीच से एक कहकहा फूट पड़ता और वे उठ-उठकर एक-दूसरे से बगलगीर होने लगते। बिन्नी बचपन में बहुत खामोश लड़का था। अब उसे इस तरह हुड़दंग करते देखकर उसे आश्चर्य होता था। कई-कई घण्टे घर में तूफान मचा रहता था। उसके बाद फिर नीरवता छा जाती, जो बहुत ही अस्वाभाविक और दम घोटनेवाली प्रतीत होती थी। जब बिन्नी दो-दो दिन घर नहीं आता, तो उस नीरवता के ओर-छोर गुम हो जाते और वह अपने को सदा से गहरे शून्य एकान्त में पड़ी हुई महसूस करती।

अंधेरा गहरा होने लगा, और मोनिका का बाप जाकर अपने कमरे में बन्द हो गया, तो उसने फिर दरवाज़ा खोल लिया। मादा सूअर और उस के बच्चे सामने घर के अहाते में डेरा जमाए थे और एक मोटा सूअर नाली के पास हुंफ्-हुंफ् कर रहा था। हवा तेज़ हो गई थी, और तूत के बुड्ढे पेड़ की डालियां बुरी तरह हिल रही थीं। आसमान का जो छोर दिखाई देता था, वहां रह-रहकर बिजली चमक जाती थी। दो महीने से प्रायः रोज ही वर्षा हो रही थी। घर से कुएं तक गली में कीचड़ ही कीचड़ भरा रहता था। इस कीचड़ के लिए वचन को लड़के-लड़कियों की उन टोलियों से गिला था, जो वर्षा आरम्भ होने से पूर्व, आधी-आधी रात तक गली में घूमती हुई तार-स्वर में ईश्वर से पानी बरसाने का अनुरोध किया करती थीं। अब जैसे उन्हींकी वजह से सारा दिन गली में चिपड़-चिपड़ होती रहती थी।

ड्योढी के दरवाज़े पर फिर दस्तक हुई। इरावती ने दरवाज़ा खोल

दिया और बिन्नी उधर से मुस्कराता हुआ अन्दर आ गया।

"आगे की तरफ बहुत कीचड़ है भाभी, माफ करना," कहता हुआ वह अपने कमरे में आ गया। इरावती ने उसपर एक शिकायत-भरी नज़र डाल कर दरवाज़ा बन्द कर लिया। उसके सिर के बाल बुरी तरह उलझे हुए थे और कुर्ता और पजामा बहुत मुचड़े हुए थे। यह स्पष्ट था कि वह सुबह जिस हाल में सोकर उठा था, अभी तक उसी हाल में था और अब तक उसे मुंह-हाथ धोने का समय भी नहीं मिला था।

"मां, जल्दी से रोटी डाल दे, भूख लगी है!" उसने आते ही चारपाई पर फैलते हुए आदेश दिया। बचन चुपचाप अपनी जगह पर बैठी रही। न उठी और न ही उसने मुंह से कुछ कहा। कुछ क्षण प्रतीक्षा करने के बाद बिन्नी ने सिर उठाया और कहा, "मां, रोटी···।"

"रोटी आज नहीं बनी है," बचन बोली, "मुझे क्या पता था कि लाट साहब आज भी घर आएंगे कि नहीं? रात की रोटी मैंने सवेरे खाई, सवेरे की अब खाई। मैं किस तरह रोज़-रोज़ बासी रोटी खाती रहूं? किसी तन्दूर पर जाकर खा आ।"

बिन्नी हंसता हुआ उठ बैठा और मां के मोढ़े के पास चला गया।

"यहां तंदूर है कहां, जहां जाकर खा लूं?" वह बोला, "मेरे हिस्से की जो बासी रोटी रखी थी, वह तूने क्यों खाई? मेरी बासी रोटी दे···।" और वह मां का घुटना पकड़कर बैठ गया।

"मेरे पेट से निकाल ले अपनी बासी रोटी!" बचन ने वाक्य आरम्भ किया था मीठी झिड़की के रूप में, पर समाप्त करते-करते उसकी आंखें गीली हो गईं।

बिन्नी ने उसकी गीली आंखें नहीं देखीं। वह उठकर रोटी वाले डिब्बे के पास चला गया और बोला, "डिब्बे में रखी होगी, ज़रूर होगी।"

बचन ने उसकी नज़र बचाकर अपनी आंखें पोंछ लीं। बिन्नी रोटी वाला डिब्बा लिए हुए उसके सामने आ बैठा। डिब्बे में कटोरा-भर दाल के साथ चार रोटियां एक कपड़े में लपेटकर रखी थीं। बिन्नी ने जल्दी से एक

रोटी तोड़ ली।

"यह तो ताज़ा रोटी है !" वह ग्रास मुंह में ठूंसे हुए बोला।

"बासी रोटी खाने को मां जो है !" कहकर बचन उठ खड़ी हुई। उसने पानी का गिलास भरकर उसके पास रख दिया। बिन्नी ने एक घूंट में गटागट गिलास खाली कर दिया और बोला, "और !"

बचन ने गिलास उठा लिया और सुराही से उसमें पानी उंडेलती हुई बोली, "लाली का कार्ड आया है।"

"अच्छा !" कहकर बिन्नी रोटी खाता रहा। उसने कार्ड के सम्बन्ध में ज़रा जिज्ञासा प्रकट नहीं की। बचन का दिल दुख गया। वह गिलास बिन्नी के आगे रखकर, बिना एक शब्द कहे अहाते में चली गई। और चारपाई पर दरी डालकर पड़ गई। उसका दिल उछलकर आंखों में बह आने को हो रहा था,पर वह किसी तरह चेहरा सख्त करके अपने को रोके रही। थोड़ी देर में बिन्नी जूठे पानी से हाथ धोकर, मुंह पोंछता हुआ अन्दर से आ गया।

"कहां है कार्ड ?" उसने पूछा।

"कहीं नहीं," बचन ने रुंधे हुए स्वर में कहा और करवट बदल ली।

"अब बता दे ना, जल्दी से सब समाचार पढ़ दूं।"

"सो जा, मुझे कोई समाचार नहीं पढ़वाने हैं।"

"पढ़वाने क्यों नहीं हैं, मैं अभी सब सुनाता हूं," कहकर बिन्नी अन्दर चला गया और कार्ड ढूंढ़कर ले आया। साथ लालटेन भी उठा लाया। आधे मिनट में उसने सरसरी नजर से सारा कार्ड पढ़ डाला।

"भैया की तबियत ठीक नहीं है," वह लालटेन ज़मीन पर रखकर मां की चारपाई के पैताने बैठ गया। बचन सहसा उठकर बैठ गई। बिन्नी ने गुन-गुन करके पहली डेढ़ पंक्ति पढ़ी और फिर उसे सुनाने लगा। लाली ने लिखा था कि उसका ब्लड प्रेशर फिर बढ़ गया था। डॉक्टर ने उसे आराम करने की सलाह दी है। कुसुम का स्वास्थ्य अब ठीक है और उसका रंग लाली पर आ रहा है। उन्होंने मकान बदल लिया है, क्योंकि पहला घर हवादार नहीं था और बच्चों को वहां से स्कूल जाने में भी दिक्कत होती थी। अब

दीवाली पास आ रही है, इसलिए बच्चे मां को बहुत याद करते हैं। मां को गए छः महीने से ऊपर हो गए हैं,'' इसलिए सबका दिल मां के लिए उदास है।

''इसके बाद सबकी नमस्ते हैं,'' कहकर बिन्नी ने कार्ड रख दिया।

''यह नहीं लिखा कि किस डॉक्टर का इलाज कर रहा है?''

''तू जैसे वहां के सब डाक्टरों को जानती है।''

बिन्नी ने बात अनायास कह दी थी, पर बचन का हृदय छिल गया। उसके चेहरे पर फिर कठिनता आ गई।

''मैं कल वहां चली जाती हूं,'' उसने कहा।

''तू चली जाएगी तो मैं अकेला कैसे रहूंगा? मेरी रोटी...?''

बचन ने वितृष्णा से उसके चेहरे को देखा, जिसका अर्थ था कि क्या तेरी रोटी उसकी जान से ज़्यादा प्यारी है।

''तू कौन घर की रोटी पर रहता है,'' मुंह से उसने इतना ही कहा।

''भैया का ब्लड प्रेशर कोई नया तो है नहीं...,'' बिन्नी फिर कहने लगा।

''तू रहने दे, मैं कल जा रही हूं,'' बचन ने उसे बीच में ही काट दिया। कई क्षण दोनों खामोश रहे। फिर बिन्नी 'अच्छा' कहकर उठ गया।

अगले दिन सुबह ही वह 'अभी थोड़ी देर में आऊंगा' कहकर चला गया और दोपहर तक लौटकर नहीं आया। बचन का किसी काम में दिल नहीं लग रहा था। फिर भी उसने खाना बनाया और घर के सभी छोटे-मोटे काम पूरे किए। बिन्नी की चारों-पांचों कमीज़ें लेकर उनके टूटे हुए बटन लगा दिए। फिर उसने अपनी दरी और कपड़े एक जगह इकट्ठे कर लिए। यह निश्चित नहीं था कि वह उस दिन वहां से जा पाएगी या नहीं। बिन्नी सुबह उसे निश्चित कुछ बताकर नहीं गया था। सम्भव था कि वह फिर रात तक घर आए ही नहीं। रात को भी उसके आने का भरोसा नहीं था। यह भी सम्भव था कि बिन्नी के पास किराये के लिए पैसे हों ही नहीं। महीने की उन्नीस तारीख थी और उन्नीस तारीख को उसके पास कभी पैसे नहीं रहते थे। उस स्थिति में उसे तीन-चार तारीख तक अपना

जाना स्थगित करना होगा। वह यह भी नहीं जानती थी कि दीवाली कौन तारीख को पड़ेगी। वह सोचने लगी कि इस बीच लाली की तबीयत ज़्यादा खराब न हो जाए। उसे ज़्यादा ही तकलीफ होगी, जो उसने चिट्ठी में लिखा है। नहीं वह चिट्ठी में कभी न लिखता। वह पन्द्रह-बीस दिन वहां से न जा सकी तो···?

तभी बिन्नी आ गया। उसके साथ उसका लम्बे बालों वाला दोस्त शशि भी था, जिसकी गरदन बात करते हुए तोते की तरह हिलती थी। वह उसकी दाल का सबसे बड़ा प्रशंसक था। आते ही दाल की फरमाइश करता था। सदा की तरह वे गली से ही ऊंचे स्वर में बातें करते हुए आए।

''टिकट ले आया हूं,'' बिन्नी ने आते ही कहा, ''मंगलवाड़ी से शशि को साथ लिया, और वहीं से टिकट भी ले लिया। पर तू अभी तैयार ही नहीं हुई···!''

''तैयार क्या होती ? तू मुझसे कहकर गया था···?''

''जब रात को तय हो गया था, तो सुबह कहने की क्या ज़रूरत थी ? अब जल्दी से तैयार हो जा। दो घण्टे में गाड़ी जाएगी। नकद सवा बीस खर्च करके आया हूं, और वे भी उधार के।''

बचन को बुरा लगा कि वह बाहर के आदमी के सामने ऐसी बात कह रहा है। वह नहीं जानती थी कि टिकट के लिए उसे रुपये उधार लेने पड़े होंगे ? वह कब चाहती थी कि उसकी वजह से उसपर उधार चढ़े ? वह कह देता, तो वह बारह-चौदह दिन बाद चली जाती।

वह कुछ न कहकर कपड़े लपेटने लगी।

''हट मां, तुझे बिस्तर बांधना आता भी है ?'' बिन्नी आगे बढ़ आया। ''उलटी-सीधी रस्सी बांधेगी, कहीं से मोटा कर देगी, कहीं से पतला। हट जा, मैं एक मिनट में बांध देता हूं। ऐसा बिस्तर बंधेगा कि रास्ता-भर तेरा खोलने को जी नहीं चाहेगा।''

''तू रोटी खा ले, मैं बांध लेती हूं,'' बचन की आंखें भर आईं।

''रोटी खानेवाला आदमी साथ लाया हूं,'' वह मां के लपेटे हुए कपड़ों

को फिर से फैलाता हुआ बोला, "यह इसीलिए आया है कि तू चली जाएगी तो तेरे हाथ की दाल फिर कहां मिलेगी ?"

बचन की गीली आंखों में हल्की-सी मुस्कराहट भर गई।

"यह भी खा ले," वह बोली। "मैं अभी दो फुलके और बना देती हूं।"

"और बनाने की ज़रूरत नहीं। जो हैं, वही खा लेंगे।"

"पहले मैं खा लूं, फिर जो बचें वे इसे दे देना," कहकर शशि गरदन उठाकर हंस दिया। बिन्नी बिस्तर बांधता रहा। वह उन दोनों के लिए रोटी डाल लाई।

"तैयार !" बिन्नी ने हाथ झाड़े और शशि के साथ खाना खाने डट गया।

"मां, अपने लिए रख लेना और जितना बचे वह हमें ला देना," शशि दाल सुड़कता हुआ बोला। वे दोनों खा चुके तो बचन ने जल्दी से बरतन समेट दिए।

"अब मां, तू भी जल्दी से खा ले," बिन्नी ने कुल्ला करके हाथ पोंछते हुए कहा।

"मैंने खा लिया है।"

"कब ?" बिन्नी ने पास जाकर उसके कन्धे पकड़ लिए।

"तेरे आने से पहले।"

"झूठी !"

"सच, मैंने खा लिया है।"

"आगे तो कभी इतनी जल्दी नहीं खाती।"

"आज खा लिया है।···घर से जाना था न ! तुम दोनों तो भूखे नहीं रहे ?"

"एक-चौथाई भूखे रह गए !" शशि ने डकार लेकर तौलिये से मुंह पोंछा और उसे खूंटी पर टांगकर हंसने लगा।

स्टेशन पर उसे गाड़ी में बैठाकर वे दोनों प्लेटफार्म पर टहलने लगे। रात को भी बचन ने ठीक से नहीं खाया था, इसलिए भूख के मारे उसका

सिर चकरा रहा था। वह जानती थी कि बिन्नी को पता है उसने कुछ नहीं खाया। इसीलिए उसके मना करने पर भी वह आधी दर्जन केले लेकर रख गया था। वह एक बार मना कर चुकी थी, इसलिए नहीं खा रही थी। बिन्नी विशेष अनुरोध करता, तो वह खा लेती। मगर बिन्नी और शशि टहलते हुए दूर चले गए थे, और शायद अब भी उनमें बहस जारी थी। उसकी समझ में नहीं आता था कि ये लोग इतनी बहस क्यों करते हैं। हर वक्त बहस, बहस, बहस ! बहस का कोई अन्त भी होता है ! जैसे सारी दुनिया के झगड़े इन्हींको निपटाने हों ! फटे हाल रहेंगे, सेहत का ज़रा ध्यान नहीं रखेंगे, और बातें जैसे संसार की सम्पत्ति के यही स्वामी हों, और उसे बांटने की समस्या इन्हींके सिर पर आ पड़ी हो।

वे दोनों प्लेटफार्म के उस सिरे तक होकर वापस आ रहे थे। वह उनके चेहरे देख रही थी। माथे पर सलवटें डाले वे हाथ हिला-हिलाकर बातें कर रहे थे। फिर भी वे बच्चे-से दीखते थे। उस समय शायद वे यह भी भूल गए थे कि वे उसे गाड़ी पर चढ़ाने आए हैं। सहसा गार्ड की सीटी सुनकर वे उसके डिब्बे के पास आ गए परन्तु वहां आकर भी उनकी बहस चलती रही—करघे का काम रुक जाएगा तो लाखों आदमी बेकार हो जाएंगे। और जैसे कोमल रोएं हाथ के कपड़े के होते हैं, वैसे मशीनी कपड़े के नहीं हो सकते···! बचन सोचने लगी कि ये लोग कभी अपने कपड़े क्यों नहीं देखते ? इन्हें अपनी बेकारी की चिन्ता क्यों नहीं होती ?

गाड़ी चलने लगी तो जैसे बिन्नी को होश हुआ और उसने उसका हाथ पकड़कर कहा, "अच्छा मां···।"

बचन के ओंठों पर रूखी-सी मुस्कराहट आ गई। उसने उसके सिर पर हाथ फेर दिया।

"अब कब आएगी ?"

"जब तू बुलाएगा।"

गाड़ी ने रफ्तार पकड़ ली। वह देर तक खिड़की से सिर निकालकर उन्हें देखती रही। वे हाथ में हाथ डाले गेट की ओर जा रहे थे। उनकी

बहस शायद अब भी चल रही थी।

बचन को घर आए पन्द्रह दिन हो गए थे।

"बिन्नी की चिट्ठी नहीं आई?" उसने लाली के कमरे के बाहर रुककर पूछा। लाली से सवाल पूछने में उसके स्वर में शासित का सा भाव आ जाता था। वह बेटा बड़ा होते-होते इतना बड़ा हो गया था, कि वह अपने को उससे छोटी महसूस करने लगी थी।

"आ जा मां," लाली ने कागज़ों से आंखें उठाकर कहा। "चिट्ठी उसकी आज भी नहीं आई। न जाने इस लड़के को क्या हो गया है?"

"तू काम कर, मैं जा रही हूं," वह बोली। "सिर्फ चिट्ठी पूछने ही आई थी।"

वह बरामदे से होकर अपने कमरे में आ गई। वह जानती थी कि लाली का समय क़ीमती है। वह आधी-आधी रात तक बैठकर दूसरे दिन के केस तैयार करता है। मुवक्किलों की वजह से उसका खाने-पीने का भी समय निश्चित नहीं रहता। छः महीने में उसकी व्यस्तता पहले से कहीं बढ़ गई थी। नये घर में आ जाने से जगह का आराम अवश्य हो गया था, पर कचहरी पहले से भी दूर हो गई थी। उसकी व्यस्तता के कारण वह कई बार सारा-सारा दिन उससे बात नहीं कर पाती थी। रात को जब वह बैठक से उठकर आता, तो सीधा सोने के कमरे में चला जाता। दिन-भर की थकान के बाद वह उसके आराम में विघ्न नहीं डालना चाहती थी। सवेरे वह कुसुम से पूछ लेती कि रात को उसकी तबीयत कैसी रही है। कुसुम संक्षेप में उसे हाल बता देती।

"सोने से पहले उसके सिर में बादाम रोगन डाल दिया करो," वह कहती।

"मैं कई बार कहती हूं, पर वे डलवाते ही नहीं," कुसुम जैसे रटा-रटाया उत्तर दे देती।

"मुझे बुला लिया करो, मैं आकर डाल दूंगी।"

"डालने को नौकर है, मगर वे डलवाते ही नहीं।"

वह जानती थी कि सिर में बादाम रोगन डलवाने के लिए लाली को किस तरह मनाया जा सकता है। मगर कुसुम अपने को अधिक अंतरंग समझती थी, और उसके सुझावों से सहमति प्रकट करती हुई भी, करती वही थी जो उसके मन में होता था। वह जिस शिष्टता और कोमलता से बात करती थी, उससे बचन को लगता था कि वह उस घर में केवल मेहमान है। दिन-भर उसके करने के लिए वहां कोई काम नहीं होता था। खाना बनाने के लिए एक नौकर था, और ऊपर का काम करने के लिए दूसरा। उनके काम की देख-भाल के लिए कुसुम थी। जब भी बचन कोई काम करने के लिए कहती, तो कुसुम नौकर का ज़िक्र कर देती—नौकर के रहते अपने हाथ से काम करने की क्या ज़रूरत है? यही बात लाली भी कह देता था—मां, तू काम करेगी तो घर में दो-दो नौकर किसलिए हैं?

बचन सोचती थी कि काम करने के लिए नौकर हैं, और देख-भाल के लिए कुसुम है, फिर घर में उसका होना किसलिए है? सवेरे पांच बजे से रात के दस बजे तक वह क्या करे? पन्द्रह दिन पहले वह आई ही थी, तो बच्चे उसके गिर्द हुए रहते थे। उन्हें दादी से हज़ारों बातें कहनी और शिकायतें करनी थीं। मगर चार दिन में ही उनके लिए उसकी नवीनता समाप्त हो गई थी। उनकी अपनी छोटी-छोटी व्यस्तताएं थीं जिनमें उनका समय बंटा हुआ था। कुमुद कभी-कभी ज़रूर उसके पास आ जाती थी, और उसके कमरे में खामोशी खेलती रहती थी। उसे दादी शायद इसलिए अच्छी लगती थी कि मां दोनों भाइयों से अधिक स्नेह करती थी...।

बचन कमरे में आकर चारपाई पर लेट गई। मन ताने-बाने बुनने लगा। बिन्नी ने अभी तक चिट्ठी क्यों नहीं लिखी? अंधेरे घर में इस समय वह अकेला सोया होगा। रोटी का उसने क्या डौल किया है? उसने चलते समय उससे पूछा तक नहीं कि वह पीछे कैसे रहेगा, कहां रोटी खाएगा? उसके रहते वह तन-बदन की होश भूला रहता था, अब जाने उसकी क्या हालत होगी? चिट्ठी ही लिख देता तो कुछ तसल्ली हो जाती। मगर उसे चिट्ठी

लिखने की होश आएगी ?

कमरे की खिड़की खुली थी और दूर तक खुला आकाश दिखाई दे रहा था। खिड़की से दिखाई देते हुए उन नक्षत्रों के विन्यास से वह परिचित थी। वही नक्षत्र वह बम्बई की उस मनहूस बस्ती के ऊपर भी झिलमिलाते देखा करती थी। यहां से वे उसे तिरछे कोण से दिखाई देते थे, वहां वह ग्रहाते में लेटकर उन्हें ठीक अपने ऊपर देखा करती थी। उसी तरह लेटे हुए वह बिन्नी की आहट की प्रतीक्षा करती थी। हुंफ्-हुंफ् की ध्वनियां पास आतीं, और दूर चली जाती थीं। फिर दूर से फटे हुए गले की बेहूदा आवाज़ सुनाई देने लगती थी, "ओ डैडाई है ड्विंजो-फेंजल···।" उस आवाज़ से वह कितनी घृणा करती थी ! यहां इस एकान्त बंगले में आसपास में कोई आवाज़ नहीं आती थी। नौ-साढ़े नौ बजे बच्चों के सो जाने के बाद निस्तब्धता छा जाती थी। केवल रंगीलाल के बरतन मलने या चौका धोने की ही आवाज़ सुनाई देती थी।

उसने करवट बदल ली कि किसी तरह नींद आ जाए। नींद न आना रोज़ की बात हो गई थी। कहां दस बजे से ही उसकी आंखों में नींद भर जाती थी, और कहां अब वह ग्यारह-बारह और एक के घंटे गिनती रहती थी। 'जाने क्यों ?' वह सोचती रह जाती।

रात को वह देर से सोई, मगर सुबह जल्दी उठ गई।

उठने पर उसका हृदय रात से अधिक अस्थिर और अशान्त था। इतना बड़ा पहाड़-सा दिन और उसके बाद फिर वैसी ही रात! लम्बी निष्क्रियता की कल्पना से एक बड़ा शून्य उसके अन्तर को घेरे था। आकाश में चिड़ियों के गिरोह उड़ रहे थे। रसोईघर में रंगी स्टोव में हवा भर रहा था। उसे साहब के बिस्तर पर चाय पहुंचानी थी। बम्बई में सुबह जब वह कमरे में बाल्टी रखकर नहा रही होती, तो बिन्नी बाहर से चाय की मांग करने लगता था। उससे उसके भजन में बाधा पड़ती थी और उसे उलझन होती थी पर वह चुपचाप उसके लिए चाय बना देती थी।···परन्तु आज उसे इस बात की उलझन हो रही थी कि उसका भजन में मन क्यों नहीं

लगता। अब जबकि भजन के लिए पूरा अवकाश था, उसकी प्रवृत्ति उस ओर क्यों नहीं होती थी ?

वह कुछ देर बरामदे में खड़ी होकर सूर्योदय के स्वर्णिम रंग को देखती रही। क्षितिज के एक कोने से दूसरे कोने तक झिलमिलाती हुई स्वर्णिम आभा धीरे-धीरे निखर रही थी। लगता था, जैसे गोलक में बन्द उजाला फूटकर बाहर निकलने के लिए संघर्ष कर रहा हो। उजाले की बढ़ती हुई झलक से हर क्षण ऐसी प्रतीति होती थी। उसने बरामदे से उतरकर पूजा के लिए कुछ गेंदा के फूल चुन लिए और रसोईघर में चली गई।

रंगी स्टोव से केतली उतारकर चायदानी में पानी डाल रहा था। उसने अपने आंचल के फूल आले में डाल दिए। रंगी ट्रे उठाकर चलने लगा, तो उसने ट्रे उसके हाथ से ले ली।

"रहने दे, मैं ले जाती हूं।" और वह ट्रे लिए हुए लाली के कमरे की ओर चल दी।

"मां जी, आप मत ले जाइए। साहब मुझपर नाराज़ होंगे," रंगी ने पीछे से संकोच के साथ कहा।

"इसमें नाराज़ होने की क्या बात है ? मैं तेरे कहने से थोड़े ही ले जा रही हूं ?" और वह थोड़ा खांसकर लाली के कमरे में चली गई।

लाली कम्बल ओढ़कर विस्तर पर बैठा था। कुसुम सोई हुई थी। लाली के हाथ में कुछ कागज़ थे, जिन्हें वह ध्यान से पढ़ रहा था। उसने यह लक्षित नहीं किया कि चाय लेकर मां आई है। बचन ने ट्रे मेज़ पर रख प्याली में चाय बनाई और उसके पास ले गई। लाली ने चाय के लिए हाथ बढ़ाया तो देखा कि प्याली लिए मां खड़ी है।

"मां, तू ?" उसने आश्चर्य के साथ कहा।

बचन ने प्याली उसके हाथ में दे दी। उसने पहली बार लक्षित किया कि लाली के बाल कनपटियों के पास से सफेद हो गए हैं। चश्मा उतार देने से उसकी आंखों के नीचे गहरे गड्ढे नज़र आ रहे थे। लाली ने कागज़ रखकर चश्मा लगा लिया।

"रंगी और नारायण क्या कर रहे हैं ?" उसने पूछा।

"नारायण दूध लाने गया है," वह बोली, "रंगी रसोईघर में है।"

"तो उससे नहीं आया जाता था ? तू सुबह-सुबह उठकर चाय लाए, वाह ! इससे अच्छा है मैं आप ही बनाकर पी लूं।"

"तू ज़रूर बनाकर पी लेगा, जिसे यह नहीं पता कि दूध कौन-सा है और चीनी कौन-सी है !" वह थोड़ा हंस दी। तभी कुसुम करवट बदलकर उठ बैठी।

"मां जी, आप···?" उसने भी आंख मलते हुए उसी आश्चर्य के साथ कहा। फिर झट से कम्बल उतारकर वह बिस्तर से निकल आई।

"आप रहने दीजिए मां जी, मैं बनाती हूं।"

कुसुम दूसरी प्याली में चाय बनाने लगी। बनाकर प्याली उसने बचन की ओर बढ़ा दी।

"मैं अभी नहाई नहीं। अभी से चाय पी लूं ?"

"पी भी ले मां," लाली बोला, "कभी तो धरम-करम छोड़ दिया कर।"

"नहीं, मैं ऐसे नहीं पीती, "तुम्हीं लोग पियो।"

कुसुम प्याली लेकर अपने बिस्तर पर चली गई। बचन लाली के पैताने बैठ गई। लाली और कुसुम खामोश चाय पीते रहे।

कमरे में हर चीज़ व्यवस्थित ढंग से रखी थी। अंगीठी पर नीले रंग का कपड़ा बिछा था, जिसपर कुसुम ने सफेद डोरे से कढ़ाई की थी। वहीं एक ओर अखरोट की लकड़ी का बना गौतम बुद्ध का बस्ट पड़ा था, और दूसरी ओर हाथीदांत की हंसों की जोड़ी रखी थी। सन्दूकों पर गद्दे बिछा-कर उन्हें लाल कपड़े से ढक दिया गया था। कोने में कुसुम की सिलाई की मशीन पड़ी थी, और वहां पास ही लाली की अधसिली कमीज़ के टुकड़े बंधे रखे थे। मेज़ पर छोटे-से शेल्फ़ में लाली की किताबें पड़ी थीं और पास ही एक टेबुल लैम्प रखा था। दूसरे कमरे में खुलने वाले दरवाज़े के पर्दे पर भी कुसुम ने अपने हाथ से कढ़ाई कर रखी थी। उधर से करवटें बदलने की

आवाज़ आ रही थी। बच्चों की भी नींद खुल गई थी।

लाली ने चाय पीकर प्याली मेज़ पर रख दी। कुसुम अर्थपूर्ण दृष्टि से उसके चेहरे को देख रही थी। बचन उठ खड़ी हुई।

"चल दी, मां?" कहते-कहते लाली ने कागज़ उठा लिए।

"हां, तू अपना काम कर। मैं जाकर नहा-धो लूं।"

"कोई खास बात तो नहीं थी?"

"नही, बात कुछ नही थी। नौकर चाय ला रहा था, मैंने कहा मैं ले जाती हूं।"

लाली की आंखें कागज़ों पर झुक गईं। कुसुम चाय के हल्के-हल्के घूंट भर रही थी। बचन चलने के लिए उद्यत होकर भी खड़ी रही।

"एक बात सोचती हूं," वह कहने लगी।

लाली ने कागज़ फिर रख दिए।

"हां, हां!"

"इतने दिन हो गए, बिन्नी की चिट्ठी नहीं आई···।"

"मैं अब उससे कोई गिला नहीं करता," लाली चिढ़े हुए स्वर में बोला, "गफलत की भी एक हद होती है। इस लड़के का घरवालों से जैसे कोई रिश्ता-नाता ही नहीं है।"

बचन चुप रही।

"यहां रहकर बी॰ ए॰ कर लेता तो कुछ बन-बना जाता। अब साहब ज़िन्दगी-भर आवारागर्दी करेंगे।"

बचन की आंखें भर आईं। उसने चेष्टा की कि आंसू आंखों में ही रुक जाएं, पर यह सम्भव नहीं हुआ तो उसने पल्ले से आंखें पोंछ लीं।

"यह लड़का न जाने कब अपनी होश रखना सीखेगा?···अपनी जान की भी तो फिक्र नहीं करता। वहां रहकर मैं ही जो थोड़ा-बहुत देख लेती थी, सो देख लेती थी। कभी-कभी सोचती हूं कि मैं वहां उसके पास ही रहूं तो ठीक है।" और वह निर्णय सुनने के ढंग से लाली की ओर देखने लगी। लाली गम्भीर हो गया। बोला नहीं।

"मैं कहती हूं मेरी आंखों के सामने रहेगा तो मुझे पता तो चलता रहेगा कि क्या करता है, क्या नहीं करता···।" उसके स्वर में थोड़ी याचना भी आ गई।

"मां जी का यहां दिल नहीं लगा," कुसुम ने प्याली रखते हुए कहा। पल-भर लाली की आंखें उससे मिली रहीं।

"अभी तो मां, तू आई ही है," वह बोला, "दस-पन्द्रह रोज़ में दीवाली है···।"

"मेरा बच्चों को छोड़कर जाने को मन करता है? मैं वैसे ही बात कर रही थी," वह फिर से चलने के लिए तैयार होकर बोली, "पता नहीं, रोटी भी ठीक से खाता है या नहीं।"

कुसुम उठकर रंगी को आवाज़ देती हुई बाहर चली गई।

"तू जाना ही चाहे तो और बात है।" लाली के चेहरे पर कुछ अन्य-मनस्कता आ गई।

"जाने की बात नहीं है, मैं तो वैसे ही सोचती थी···।"

वह बाहर की ओर देखने लगी कि फिर न आंसू टपकने लगें।

"जाना है, चली जा। नहीं, खामखाह चिन्ता से परेशान रहेगी।"

बचन कुछ क्षण खामोश खड़ी रही। लाली अपनी उंगलियां मसलता रहा।

"किस गाड़ी से चली जाऊं?"

"रात की गाड़ी ठीक रहती है। उसमें भीड़ कम होती है।"

"तेरी तबीयत की चिन्ता रहेगी···।"

"मेरी तबीयत ठीक ही है।"

"तू चिट्ठी लिखता रहेगा न?"

"हां। मैं नहीं लिखूंगा तो कुसुम लिख देगी।"

"अच्छा···!"

रात को गाड़ी में उसे अच्छी जगह मिल गई। ज़नाने डिब्बे में उसके

अतिरिक्त दो ही और सवारियां थीं। कुसुम नारायण को लेकर उसे छोड़ने के लिए आई थी। लाली मुवक्किलों की वजह से नहीं आ पाया था। कुसुम गाड़ी चलने तक उसके पास बैठकर बातें करती रही कि दादी के पीछे बच्चे फिर उदास हो जाएंगे, तीन-चार दिन घर सूना-सूना लगेगा, और कि वह रास्ते के लिए खाना बनवाकर ले जाती तो अच्छा था। गाड़ी ने सीटी दी तो कुसुम प्लेटफार्म पर उतर गई।

"जाते ही चिट्ठी लिखिएगा," उसने कहा।

"तुम लाली की तबीयत का पता देती रहना," बचन ने कहा। सहसा उसे लाली के सफेद बालों का ध्यान हो आया।

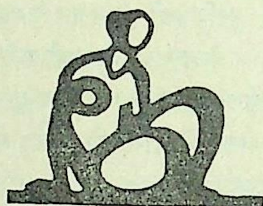
"रात को उसे देर-देर तक मत पढ़ने देना, और उससे कहना कि सिर में बादाम रोगन डलवा लिया करे।"

कुसुम ने सिर हिला दिया। गाड़ी चल दी तो उसने हाथ जोड़ दिए।

प्लेटफार्म पीछे रह गया, तो बचन आकाश की ओर देखने लगी। उसके अन्तर में फिर एक शून्य-सा भरने लगा। क्षितिज के पास वही नक्षत्र चमक रहे थे। बचन अपलक दृष्टि से उन्हें देखती रही। वह जहां जा रही थी, उस घर का नक्शा धीरे-धीरे उसकी आंखों के आगे घूमने लगा। नीची छत वाला वह टूटा-फूटा कमरा, मादा सूअर और उसके बच्चों की हुंफ्-हुंफ्, और कुएं की तरफ से आती हुई मोटी, भद्दी फटी हुई आवाज—ओ डैडाई है ड्विंजो-फेंजल···अंधेरा, एकान्त, बिन्नी, शशि और उनके दोस्त, बहसें और दाल-रोटी के लिए उन लोगों की छीना-झपटी···।

उसकी आंखें भर आईं। क्षितिज के पास चमकते हुए नक्षत्र धुंधले पड़ गए।

उसने आंखें पोंछ लीं। नक्षत्र फिर चमकने लगे।



# मिस पाल

वह दूर से दिखाई देती हुई आकृति मिस पाल ही हो सकता थी।

फिर भी विश्वास करने से पहले मैंने अपना चश्मा ठीक किया। निःसंदेह, वह मिस पाल ही थी। यह तो खैर मुझे पता था कि वह उन दिनों कुल्लू में ही कहीं रहती है, मगर इस तरह अचानक उससे भेंट हो जाएगी, यह मैंने नहीं सोचा था। और उसे सामने देखकर भी मुझे यह विश्वास नहीं हुआ कि वह स्थायी रूप से कुल्लू और मनाली के बीच उस छोटे-से गांव में ही रहती होगी। जब वह दिल्ली से नौकरी छोड़कर आई थी, तो वहां लोगों ने उसके बारे में क्या-क्या नहीं सोचा था!

बस रायसन के डाकखाने के पास पहुंचकर रुक गई। मिस पाल डाकखाने के पास खड़ी पोस्टमास्टर से कुछ बात कर रही थी। हाथ में वह एक थैला लिए थी। बस के रुकने पर वह न जाने किस बात के लिए पोस्टमास्टर को धन्यवाद देती हुई बस की तरफ मुड़ी ही थी कि मैं उतरकर उसके सामने पहुंच गया। एक आदमी के इस तरह अचानक सामने आ जाने से मिस पाल पहले तो थोड़ा अचकचा गई, मगर मुझे पहचानते ही उसका चेहरा खुशी और उत्साह से खिल गया।

"अरे तुम, रणजीत?" उसने कहा, "तुम यहां कहां से टपक पड़े?"

"मैं इस बस से मनाली से आ रहा हूं," मैंने कहा।

"अच्छा? मनाली तुम कब से आए हुए थे?"

"आठ-दस दिन हुए आया था। आज वापस जा रहा हूं।"

"आज ही जा रहे हो ?" मिस पाल के चेहरे से आधा उत्साह गायब हो गया। "देखो, कितनी बुरी बात है कि आठ-दस दिन से तुम यहां हो और मुझे मिलने की तुमने कोशिश भी नहीं की। तुम्हें यह तो पता ही होगा कि आजकल मैं कुल्लू में हूं।"

"हां, यह तो पता था, मगर यह नहीं पता था कि कुल्लू के किस इलाके में हो। अब भी तुम अचानक ही दिखाई दे गईं, नहीं मुझे कहां पता चलता कि तुम इस जंगल को आबाद कर रही हो।"

"सचमुच यह बहुत ही बुरी बात है," मिस पाल उलाहने के स्वर में बोली, "तुम इतने दिन से यहां हो और मुझसे तुम्हारी भेंट हुई आज जाने के समय...।"

ड्राइवर ज़ोर-ज़ोर से हॉर्न बजाने लगा। मिस पाल ने कुछ चिढ़कर ड्राइवर की तरफ देखा और एकसाथ झिड़कने और क्षमा मांगने के स्वर में कहा, "बस जी एक मिनट। मैं भी इसी बस से कुल्लू चल रही हूं। मुझे कुल्लू की एक सीट दे दीजिए। थैंक यू, थैंक यू वैरी मच!" और फिर मेरी तरफ मुड़कर बोली, "तुम इस बस से कहां तक जा रहे हो?"

"आज तो इस बस से जोगिन्दरनगर जाऊंगा। वहां एक दिन रहकर कल सुबह आगे की बस पकड़ूंगा।"

ड्राइवर अब और भी ज़ोर से हॉर्न बजाने लगा। मिस पाल ने एक बार क्रोध और बेबसी के साथ उसकी तरफ देखा और बस के दरवाज़े की तरफ बढ़ती हुई बोली, "अच्छा कुल्लू तक तो हम लोगों का साथ है ही; और बात कुल्लू चलकर करेंगे। मैं तो कहती हूं कि तुम दो-चार दिन यहीं रुको, फिर चले जाना।"

बस में पहले ही बहुत भीड़ थी; और दो-तीन आदमी वहां से और चढ़ गए थे, जिससे अन्दर खड़े होने की जगह भी नहीं रही थी। मिस पाल दरवाज़े से अन्दर जाने लगी तो कण्डक्टर ने हाथ बढ़ाकर उसे रोक दिया। मैंने कण्डक्टर से बहुतेरा कहा कि अन्दर मेरे वाली जगह खाली है, मिस साहबा वहां बैठ जाएंगी और मैं भीड़ में जिस किसी तरह खड़ा होकर चला

जाऊंगा, मगर कण्डक्टर एक बार ज़िद्द पर अड़ा तो अड़ा ही रहा कि वह और सवारी नहीं ले सकता। मैं अभी उससे बात कर ही रहा था कि ड्राइवर ने बस स्टार्ट कर दी। मेरा सामान बस में था, इसलिए मैं दौड़कर चलती बस में सवार हो गया। दरवाज़े से अन्दर जाते हुए मैंने एक बार मुड़कर मिस पाल की तरफ देख लिया। वह इस तरह अचकचाई-सी खड़ी थी जैसे कोई उसके हाथ से उसका सामान छीनकर भाग गया हो, और उसे समझ न आ रहा हो कि उसे क्या करना चाहिए।

बस हल्के-हल्के मोड़ काटती हुई कुल्लू की तरफ बढ़ने लगी। तब मुझे अफसोस होने लगा कि मिस पाल को बस में जगह नहीं मिली तो मैंने ही क्यों नहीं अपना सामान वहां उतरवा लिया। मेरा टिकट जोगिन्दरनगर का था, मगर यह ज़रूरी तो नहीं था कि उस टिकट से जोगिन्दरनगर तक जाऊं ही। मगर मिस पाल से भेंट कुछ ऐसे आकस्मिक ढंग से हुई थी और निश्चय करने के लिए समय इतना थोड़ा था कि मैं यह बात उस समय सोच भी नहीं सका था। थोड़ा-सा भी समय और मिलता तो मैं ज़रूर कुछ देर के लिए वहां उतर जाता। उस थोड़े-से समय में तो मैं मिस पाल से कुशल-समाचार भी नहीं पूछ सका था और मन में उसके संबंध में कितना-कुछ जानने की उत्सुकता थी। उसके दिल्लीसे आनेके बाद लोग उसके बारेमें न जाने क्या-क्या बातें करते रहे थे। किसीका अन्दाज़ा था कि उसने कुल्लू में एक रिटायर-शुदा अंग्रेज़ मेजर से शादी कर ली है और मेजर ने अपने सेब के बगीचे उसके नाम कर दिए हैं। किसीकी खबर थी उसे वहां सरकार की तरफ से वज़ीफा मिल रहा है और वह करती-धरती कुछ नहीं, बस घूमती है और हवा खाती है। कुछ ऐसे लोग भी थे जिनका कहना था कि मिस पाल का दिमाग खराब हो गया है और सरकार उसे इलाज के लिए अमृतसर पागलखाने में भेज रही है। मिस पाल, जो एक दिन अचानक ही अपनी पांच सौ की लगी हुई नौकरी छोड़कर चली आई थी, इससे लोगों ने उसके बारे में कई-कई तरह की कहानियां प्रचलित कर रखी थीं।

जिन दिनों मिस पाल ने त्यागपत्र दिया था, उन दिनों मैं दिल्ली में

नहीं था, लम्बी छुट्टी लेकर बाहर गया हुआ था। मगर मैं काफी हद तक मिस पाल के नौकरी छोड़ने का कारण जानता था। वह सूचना विभाग में हम लोगों के साथ ही काम करती थी और राजेन्द्रनगर में हमारे घर से दस-बारह घर छोड़कर ही रहती थी। उसका जीवन दिल्ली में भी काभी अकेला जीवन था, क्योंकि दफ्तर के ज़्यादातर लोगों से उसका मन-मुटाव रहता था और बाहर के लोगों से भी वह बहुत कम मिलती-जुलती थी। दफ्तर का वातावरण उसे अपने अनुकूल नहीं लगता था और वह एक-एक दिन वहां जैसे गिनकर काटती थी। उसे प्रायः हर व्यक्ति से शिकायत रहती थी कि वह घटिया मनोवृत्ति का है और उसके साथ उठना-बैठना हो ही नहीं सकता।

"ये लोग इतने ओछे और बेईमान हैं," वह कहा करती थी, "इतनी छोटी और कमीनी बातें करते हैं कि मेरा इनके बीच काम करते हुए हर वक्त दम घुटता रहता है। न जाने क्यों लोग इतनी छोटी-छोटी बातों पर एक-दूसरे से लड़ते हैं और अपने छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए एक-दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश करते हैं!"

मगर उस वातावरण में उसके दुःखी रहने का मुख्य कारण शायद दूसरा ही था जिसे वह कभी अपने मुंह से स्वीकार नहीं करती थी। लोग उस बात को जानते थे इसलिए जान-बूझकर उसे छेड़ने के लिए तरह-तरह की बातें कहते रहते थे। बुखारिया तो अक्सर रोज़ ही उसके रंग-रूप पर कोई न कोई टिप्पणी कर देता था।

"क्या बात है मिस पाल, आज तुम्हारा रंग बहुत निखर रहा है!"

दूसरी तरफ से जोरावर सिंह उसमें बात जोड़ देता, "और आजकल मिस पाल पहले से स्लिम भी तो हो रही है।"

मिस पाल इन संकेतों से बेतरह परेशान हो उठती थी और कई बार ऐसे मौकों पर कमरे से उठकर चली जाती थी। उसकी वेश-भूषा पर भी लोग तरह-तरह की टिप्पणियां करते रहते थे। वह बेचारी शायद अपने शरीर के फैलाव की क्षतिपूर्ति के लिए ही अपने बाल छोटे कटाती थी, बगैर

बांह की कमीज़ें पहनती थी और बनाव-सिंगार से चिढ़ होते हुए भी रोज़ काफ़ी समय मेक-अप पर खर्च करती थी। मगर दफ्तर में दाखिल होते ही उसे किसी न किसीके मुंह से ऐसी बात सुनने को मिल जाती—"मिस पाल, तुम्हारी नई कमीज़ का डिज़ाइन बहुत अच्छा है। आज तो तुम गज़ब ढा रही हो!"

मिस पाल को इस तरह की हर बात दिल में चुभ जाती थी और जितनी देर वह दफ्तर में रहती उतनी देर उसका चेहरा बहुत गम्भीर बना रहता था। जब पांच बजते तो वह इस तरह अपनी मेज़ से उठती जैसे कई घंटे की यातना भोगने के बाद उसकी छुट्टी हुई हो। दफ्तर से उठकर वह सीधी अपने घर चली जाती थी और दूसरे दिन सुबह दफ्तर जाने तक वहीं रहती। शायद दफ्तर के लोगों से तंग आने की वजह से वह और लोगों से भी अपना मेल-जोल नहीं बढ़ाना चाहती थी। मेरा घर बहुत पास होने की वजह से, या शायद इसलिए कि दफ्तर के लोगों में मैं ही एक ऐसा व्यक्ति था जिसने उसे कभी शिकायत का मौक़ा नहीं दिया था, वह कभी-कभी शाम को हमारे यहां चली आती थी। मैं अपनी बूआ के यहां रहता था और मिस पाल मेरी बूआ और उनकी लड़कियों से काफ़ी घुल-मिल गई थी। कई बार घर के कामों में वह उनका हाथ भी बटा देती थी। किसी-किसी दिन हम लोग भी उसके यहां चले जाते थे। वह घर में समय बिताने के लिए संगीत और चित्रकला का अभ्यास करती रहती थी। हम लोग उसके यहां पहुंचते तो उसके कमरे से सितार की आवाज़ आ रही होती या वह रंग और कूचियां लिए कोई तसवीर बनाने में उलझी होती। मगर जब वह इन दोनों कामों में से कोई भी काम न कर रही होती, अपने तख्त पर बिछे हुए मुलायम गद्दे पर दो तकियों के बीच लेटी छत की तरफ देख रही होती। उसके गद्दे पर जो झीना रेशमी कपड़ा बिछा रहता था, उसे देखकर न जाने क्यों मुझे बहुत उलझन होती थी और मेरा मन करता था कि उसे निकालकर कहीं बाहर फेंक दूं। उसके कमरे में सितार, तबला, रंग, कैनवस, तसवीरें, कपड़े तथा नहाने और चाय बनाने का सामान इस

तरह उलझे-बिखरे होते थे कि बैठने के लिए कुरसियों का उद्धार करना एक समस्या हो जाती थी। कभी मुझे उसके झीने रेशमी कपड़ेवाले तख्त पर बैठना पड़ जाता तो मुझे मन में बहुत परेशानी होती और मेरा मन करता कि जितनी जल्दी हो सके वहां से चला आऊं। मिस पाल अपने कमरे में चारों तरफ खोजकर जाने कहां से चायदानी और तीन-चार टूटी हुई प्यालियां निकाल लेती और हम लोगों को 'फर्स्ट क्लास बोहीमियन कॉफी' पिलाने की तैयारी करने लगती। कभी वह हम लोगों को अपनी बनाई हुई तसवीरें दिखाती और हम तीनों—मैं और मेरी दोनों बहनें—अपना अज्ञान छिपाने के लिए उनकी प्रशंसा कर देते। मगर कई बार वह बहुत उदास होती और ठीक ढंग से बात भी नहीं करती। मेरी बहनें ऐसे मौकों पर उससे चिढ़ जातीं और कहतीं कि वे उसके यहां फिर कभी नहीं जाएंगी। मगर मुझे ऐसे मौकों पर मिस पाल से ज़्यादा सहानुभूति होती थी।

आखिरी बार जब मैं मिस पाल के यहां गया, उस दिन मैंने उसे बहुत ही उदास देखा था। मेरा उन दिनों अपेंडेसाइटिस का ऑपरेशन हुआ था और मैं कई दिन अस्पताल में रहकर आया था। मिस पाल उन दिनों प्रायः रोज़ ही अस्पताल में खबर पूछने आती रही थी। बूआ अस्पताल में मेरे पास ही रहती थीं, मगर खाने-पीने का सारा सामान इकट्ठा करना उनके लिए बहुत मुश्किल था। मिस पाल सुबह-सुबह आकर सब्जियां और दूध वगैरह दे जाती थी। जिस दिन मैं उसके यहां गया, उससे एक दिन पहले ही मेरी अस्पताल से छुट्टी हुई थी और मैं अभी काफी कमज़ोर था। फिर भी मैं इसलिए उसके यहां गया था कि उसने मेरे लिए जो तकलीफ उठाई थी, उसके लिए मैं उसे धन्यवाद दे आऊं।

मिस पाल ने दफ्तर से छुट्टी ले रखी थी और कमरा बन्द किए अपने गद्दे पर लेटी थी। मुझे लगा कि सुबह से शायद वह नहाई भी नहीं है।

"क्या बात है मिस पाल ? तबीयत तो ठीक है ?" मैंने पूछा।

"तबीयत बिलकुल ठीक है," उसने कहा, "मगर मैं नौकरी छोड़ने की सोच रही हूं।"

"क्यों ? कोई खास बात हो गई है क्या ?"

"नहीं, खास बात क्या होगी ! बात इतनी ही है कि मैं ऐसे लोगों के बीच काम कर ही नहीं सकती। मैं सोच रही हूं कि कहीं दूर एक खूबसूरत-से पहाड़ी इलाके में चली जाऊं और वहां रहकर संगीत और चित्रकला का ठीक से अभ्यास करूं। मुझे लगता है कि मैं खामखाह अपनी ज़िन्दगी यहां बरबाद कर रही हूं। मेरी समझ में नहीं आता कि इस तरह की ज़िन्दगी जीने का मतलब ही क्या है। सुबह उठती हूं, दफ्तर चली जाती हूं। वहां सात-आठ घण्टे खराब करके घर आती हूं, खाना खाती हूं और सो जाती हूं। यह सारा का सारा सिलसिला मुझे बेमतलब लगता है। मैं सोचती हूं कि मेरी ज़रूरतें हो कितनी हैं ! मैं कहीं भी जाकर एक छोटा-सा कमरा या शैक ले लूं तो थोड़ा-सा ज़रूरत का सामान अपने पास रखकर पचास-साठ या सौ रुपये में गुज़ारा कर सकती हूं। यहां जो मैं पांच सौ लेती हूं, वे पांच के पांच सौ ही खर्च हो जाते हैं। किस तरह खर्च हो जाते हैं, यह खुद मेरी समझ में नहीं आता। अगर ज़िन्दगी इसी तरह चलनी है तो क्यों खामखाह मैं दफ्तर जाने-आने का भार ढोती रहूं ? बाहर रहने में कम से कम मुझे अपनी स्वतन्त्रता तो होगी। मेरे पास कुछ रुपये पहले के हैं और कुछ रुपये मुझे अपने प्राविडेंट फण्ड के मिल जाएंगे। इतने में एक छोटी-सी जगह पर तो मेरा काफी दिन गुज़ारा हो सकता है। मैं किसी ऐसी जगह जाकर रहना चाहती हूं जहां यह सारी गन्दगी न हो और लोग इस तरह की छोटी हरकतें न करते हों। इन्सान को ठीक से जीने के लिए कम से कम यह तो महसूस होना चाहिए कि उसके आसपास का वातावरण उजला और साफ है, और वह एक मेंढक की तरह गदले पानी में नहीं जी रहा।"

"मगर तुम यह कैसे कह सकती हो कि जहां भी तुम जाकर रहोगी, वहां हर चीज़ बिलकुल वैसे ही होगी जैसे तुम चाहती हो ? मैं तो समझता हूं कि इन्सान जहां भी चला जाए, वहां अच्छी और बुरी दोनों तरह की चीज़ें उसे अपने आसपास नज़र आएंगी ही। तुम यहां के वातावरण से घबराकर कहीं और जाती हो तो यह कैसे कहा जा सकता है कि वहां का

वातावरण भी तुम्हें ऐसा ही नहीं लगेगा ? इसलिए मैं तो समझता हूं कि नौकरी छोड़ने की बात तुम गलत सोचती हो। तुम यहीं रहो, और अपना संगीत और चित्रकला का अभ्यास करती रहो। लोग कुछ भी कहते रहें, कहने दो !"

मगर मिस पाल की वितृष्णा इससे कम न हुई। "नहीं, तुम नहीं समझते रणजीत," वह बोली, "यहां मैं ऐसे लोगों के बीच और रहूंगी तो मेरा दिमाग बिलकुल खराब हो जाएगा। तुम नहीं जानते कि मैं जो तुम्हारे लिए सुबह दूध और सब्ज़ियां लेकर जाती रही हूं, उसे लेकर भी ये लोग यहां क्या-क्या बातें करते रहे हैं। जो लोग इन्सान के अच्छे से अच्छे काम का ऐसा मतलब लेते हों उनके बीच इन्सान रह ही कैसे सकता है ? मैंने यह सब बहुत दिन सह लिया है, अब और मुझसे नहीं सहा जाता। मैं सोच रही हूं कि जितनी जल्दी हो सके यहां से चली जाऊं। बस यही बात नहीं तय कर पा रही कि कहां जाऊं। अकेली होने से किसी अनजान जगह जाकर रहते डर भी लगता है। तुम जानते ही हो कि मैं···।" और बात बीच में ही छोड़कर वह सहसा उठ खड़ी हुई। "अच्छा, तुम्हारे लिए कुछ चाय-वाय तो बनाऊं। तुम अस्पताल से निकलकर आए हो और मैं हूं कि अपने बारे में ही बात किए जाती हूं। अभी कुछ दिन तुम्हें घर में आराम करना चाहिए। अभी से इस तरह बाहर चलने-फिरने लगोगे तो ठीक नहीं।"

"नहीं, मैं चाय नहीं पिऊंगा," मैंने कहा, "मैं तुम्हें कुछ समझा तो नहीं सकता, मगर मैं समझता हूं कि तुम लोगों की बातों को ज़रूरत से ज़्यादा महत्त्व दे रही हो। और मेरा यह भी खयाल है कि लोग वास्तव में उतने बुरे नहीं। जितना तुम समझती हो। अगर तुम इस नज़र से सोचो कि···"

"तुम इस बात को रहने दो," मिस पाल ने मेरी बात बीच में ही काट दी, "मैं इन लोगों से दिल से नफरत करती हूं। तुम इन्हें इन्सान समझते हो ? मुझे तो ऐसे लोगों से अपना पिकी कहीं अच्छा लगता है। इसमें उन लोगों से कहीं ज़्यादा सभ्यता है।"

पिंकी मिस पाल का छोटा-सा कुत्ता था। वह कुछ देर उसे गोदी में लिए उसके बालों पर हाथ फेरती रही। मैंने पहले कई बार देखा था कि वह उस कुत्ते को एक बच्चे की तरह ही प्यार करती है और उसे खाना खिलाकर बच्चों की तरह ही तौलिये से उसका मुंह पोंछा करती है। मैं कुछ देर बाद उठकर वहां से चला तो मिस पाल उसे गोदी में लिए हुए बाहर दरवाज़े तक मुझे छोड़ने निकल आई।

"पिंकी, अंकल को टा टा करो," वह उसकी आगे की एक टांग अपने हाथ से हिलाती हुई बोली, "करो टा टा टा टा!"

और जब मैं लम्बी छुट्टी से वापस आया तो मिस पाल वहां से त्यागपत्र देकर जा चुकी थी। वह अपने बारे में लोगों को इतना ही बताकर गई थी कि वह कुल्लू के किसी गांव में रहने जा रही है। बाकी बातें लोगों की कल्पना ने अपने-आप जोड़ दी थीं।

बस ब्यास के साथ-साथ मोड़ काट रही थी और मेरा मन हो रहा था कि मैं लौटकर रायसन चला जाऊं। मैं तो मनाली में दस दिन ही अकेला रहकर ऊब गया था, और मिस पाल को वहां आए कई महीने हो चुके थे। मैं जानना चाहता था कि वह अकेली वहां कैसे रह रही है और नौकरी छोड़ने के बाद उसने क्या कुछ कर डाला है। वैसे एक अपरिचित स्थान पर किसी पुराने परिचित से मिलने और बात करने का भी अपना एक आकर्षण होता है। बस जब कुल्लू पहुंचकर रुकी तो मैंने अपना सामान वहां उतारकर हिमाचल राज्य परिवहन के दफ्तर में रखवा दिया और रायसन के लिए पहली वापसी बस पकड़ ली। बस ने पन्द्रह-बीस मिनट में ही मुझे रायसन के बाज़ार में उतार दिया। मैंने वहां एक दुकानदार से पूछा कि मिस पाल कहां रहती है।

"मिस पाल कौन है भाई?" दुकानदार ने अपने पास बैठे हुए युवक से पूछा।

"वह तो नहीं, वह कटे हुए बालोंवाली मिस?"

"हां, हां, वही होगी।"

दुकान में और भी चार-पांच व्यक्ति बैठे थे। उन सबकी आंखें मेरी तरफ घूम गईं। मुझे लगा जैसे वे अपने मन में यह फैसला न कर पा रहे हों कि उस कटे हुए बालोंवाली मिस के साथ मेरा क्या रिश्ता हो सकता है।

"चलिए, मैं आपको उसके यहां छोड़ आता हूं," कहकर वह युवक दुकान से उतर आया। सड़क पर मेरे बराबर चलते हुए उसने पूछा, "क्यों भाई साहब, यह मिस क्या बिलकुल अकेली ही है या···?"

"हां, अकेली ही है!"

कुछ देर हम लोग चुपचाप चलते रहे। फिर उसने पूछा, "आप उनके क्या लगते हैं?"

मेरी समझ में नहीं आया कि मैं उसे क्या उत्तर दूं। पल-भर सोचकर मैंने कहा, "मैं उनका रिश्तेदार नहीं हूं। उन्हें वैसे ही जानता हूं।"

सड़क से बाईं तरफ थोड़ा ऊपर जाकर हम लोग खुले मैदान में पहुंच गए। मैदान चारों तरफ से पेड़ों से घिरा था और बीच में पांच-छः जालीदार कॉटेज बने थे, जो बड़े-बड़े मुर्गीखानों जैसे लगते थे। लड़का मुझे बताकर कि उनमें पहला कॉटेज मिस पाल का है, वहां से ही लौट गया। मैंने जाकर कॉटेज का दरवाज़ा खटखटाया।

"कौन है?" अन्दर मिस पाल की आवाज़ सुनाई दी।

"एक मेहमान है मिस पाल, दरवाज़ा खोलो।"

"दरवाज़ा खुला है, आ जाइए।"

मैंने दरवाज़े को धकेलकर खोल लिया और अन्दर चला गया। मिस पाल ने एक चारपाई पर अपना गद्दा और तकिया लगा रखा था और उनके बीच उसी तरह लेटी थी जैसे दिल्ली में अपने तख्त पर लेटी रहा करती थी। उसके सिरहाने के पास एक खुली हुई पुस्तक उल्टी रखी थी—बर्ट्रेण्ड रसेल की 'कांक्वेस्ट ऑफ़ हेपीनेस।' मैं देखकर यह तय नहीं कर सका कि उस समय वह पुस्तक पढ़ रही थी या लेटी हुई सिर्फ छत की तरफ देख रही थी। मुझे देखते ही वह चौंककर बैठ गई।

"अरे तुम···?"

"हां, मैं। तुमने तो सोचा भी नहीं होगा कि गया हुआ आदमी फिर वापस भी आ सकता है।"

"सचमुच बहुत अजीब आदमी हो तुम ! वापस ही आना था तो उसी समय क्यों नहीं उतर गए ?"

"बजाय इसके कि मेरा शुक्रिया करो, जो सात मील जाकर वापस चला आया हूं···"

"शुक्रिया अदा तो मैं तब करती जो तुम उसी समय उतर जाते और मुझे बस में सीट ले लेने देते।"

मैंने एक ठहाका लगाया और फिर बैठने के लिए इधर-उधर जगह देखने लगा। वहां भी चारों तरफ लगभग वही बिखराव और अव्यवस्था थी जो दिल्ली में उसके घर में दिखाई दिया करती थी। हर चीज़ शायद हर दूसरी चीज़ की जगह काम में लाई जा रही थी। एक कुरसी ऊपर से नीचे तक मैले कपड़ों से लदी थी। दूसरी कुरसी पर कुछ रंग बिखरे थे और एक प्लेट रखी थी, जिसमें बहुत-सी कीलें पड़ी थीं।

"बैठो, मैं झट से तुम्हारे लिए चाय बनाती हूं," मिस पाल सहसा व्यस्त होकर उठने लगी।

"अभी मुझे बैठने को तो कहा नहीं और चाय की फिक्र पहले करने लगीं ?" मैंने कहा, "तुम मुझे सिर्फ बैठने की जगह बता दो और चाय की बात रहने दो। इस समय तुम्हारी वह 'बोहीमियन चाय' पीने का मेरा ज़रा भी मन नहीं है।"

"तो मत पियो। मुझे कौन यह झंझट करना अच्छा लगता है ! बैठने की जगह मैं अभी बनाए देती हूं।" और कपड़े-अपड़े हटाकर उसने एक कुरसी खाली कर दी। बाईं तरफ एक बड़ी-सी मेज़ रखी थी, पर उसपर भी इतनी चीज़ें पड़ी थीं कि कहीं कुहनी रखने तक की जगह नहीं थी। मैंने बैठकर टांगें फैलाने की चेष्टा की तो पता चला कि कपड़ों के ढेर के नीचे मिस पाल ने अपने बनाए हुए खाके रख रखे हैं। मिस पाल फिर से अपने

बिस्तर में तकियों के सहारे बैठ गई थी। गद्दे पर उसने वही झीना रेशमी कपड़ा बिछा रखा था जिसे देखकर मुझे चिढ़ हुआ करती थी। मेरा उस समय भी मन होने लगा कि उस कपड़े को निकालकर फाड़ दूं या कहीं आग में झोंक दूं। मैंने सिगरेट सुलगाने के लिए मेज़ से दियासलाई की डिबिया उठाई, मगर खोलते ही वापस रख दी। डिबिया में दियासलाइयां नहीं थीं एक गुलाबी-सा रंग भरा था। मैंने दियासलाई के लिए चारों तरफ नज़र दौड़ाई, मगर डिबिया कहीं दिखाई नहीं दी।

"दियासलाई उधर रसोईघर में होगी, मैं अभी लाती हूं," कहती हुई मिस पाल सहसा फिर उठी और कमरे से चली गई। मैं उतनी देर इधर-उधर देखता रहा। मुझे फिर वह दिन याद हो आया जिस दिन मैं मिस पाल के घर पर देर तक बैठा रहा था और उससे बातें करता रहा था। मिस पाल के पिंकी से 'टा टा' कराने की बात याद आ जाने से मैं अपने-आप ही हंस दिया।

मैं हंसा ही था कि मिस पाल दियासलाई की डिबिया लिए हुए आ गई। मेरा कमरे में अकेले बैठे हुए हंस देना शायद उसे बहुत अस्वाभाविक-सी बात लगी। वह सहसा गम्भीर हो गई।

"किसीने तुम्हें कुछ पिला-विला दिया है क्या?" उसने मज़ाक और आक्षेप के मिले हुए स्वर में कहा।

"नहीं, नहीं, मैं तो अपने इस तरह लौटकर आने की बात पर ही हंस रहा हूं।" और जैसे अपने को ही अपने झूठ का विश्वास दिलाने के लिए मैंने अपनी हंसी की बनावटी नकल की और कहा, "मैं कहां सोच सकता था कि इस अनजान जगह पर तुमसे अचानक भेंट हो जाएगी। और तुम्हींने कहां सोचा होगा कि जो आदमी बस में बैठकर आगे चला गया था, वह घण्टा-भर बाद तुम्हारे कमरे में बैठा तुमसे बातें कर रहा होगा!"

और इस तरह विश्वास करके कि मैंने अपने हंसने के कारण की व्याख्या कर दी है, मैंने उससे पूछा, "मगर तुम्हारा पिंकी कहां है? यहां तो दिखाई नहीं दे रहा।"

पिंकी की बात से मिस पाल का चेहरा पहले से भी गम्भीर हो गया। मुझे लगा कि मिस पाल का चेहरा अब काफी रूखा लगने लगा है। उसकी आंखों में कुछ इस तरह की लाली भर रही थी, जैसे कई रात से वह ठीक से सोई न हो।

"पिंकी को यहां आकर एक रात सरदी लग गई थी," उसने अपनी उसांस को दबाते हुए कहा। "मैंने उसे कितनी ही गरम चीज़ें खिलाईं, मगर वह दो दिन में ही चलता बना।"

मैंने बात का विषय बदल दिया और उससे शिकायत करने लगा कि वह अपने बारे में बिना सबको ठीक से बतलाए ही चली आई, यह उसने अच्छा नहीं किया।

"लोग दफ्तर में अब भी मिस पाल की बातें करके हंसते होंगे ?" मिस पाल ने ऐसे पूछा जैसे यह सवाल पूछने वाली मिस पाल से भिन्न हो, जिसके बारे में सवाल पूछा गया था। मगर उसकी आंखों में यह जानने की बहुत उत्सुकता झलक रही थी कि मैं उसके सवाल का क्या जवाब देता हूं।

"लोगों की बातों को खामखाह इतना महत्त्व क्यों देती हो मिस पाल ?" मैंने कहा, "लोग किसीके बारे में ऐसी-वैसी बातें इसलिए करते हैं कि उनके जीवन में मनोरंजन के दूसरे साधन बहुत कम हैं। जब वह व्यक्ति पास से चला जाता है तो चार दिन में वे यह भी भूल जाते हैं कि संसार में उस व्यक्ति का अस्तित्व था भी या नहीं।"

मगर यह कहते-कहते ही मुझे अहसास हो आया कि मैंने यह कहकर गलती की है। मिस पाल शायद उस समय मुझसे यही सुनना चाहती थी कि लोग अब भी उसके बारे में उसी तरह बातें करते हैं और उसी तरह उसका मज़ाक उड़ाते हैं; शायद यह विश्वास उसके लिए अपने वर्तमान की सार्थकता स्वीकार करने के लिए ज़रूरी था।

"हो सकता है तुम्हारे सामने बातें न करते हों," मिस पाल बोली, "क्योंकि उन्हें पता है कि हम लोग···अम्···अ···आपस में मित्र रहे हैं।

नहीं, वे कमीने लोग बात करने से कभी बाज आ सकते हैं ?"

मुझे अच्छा लगा कि मिस पाल ने मेरी बात पर विश्वास नहीं किया। उसने शायद समझा था कि मैं झूठमूठ उसे दिलासा देने की चेष्टा कर रहा हूं।

"हो सकता है, बातें करते भी हों," मैंने कहा, "मगर तुम अब उन लोगों की बात क्यों सोचती हो ? कम से कम तुम्हारे लिए तो उन लोगों का अब कोई अस्तित्व ही नहीं है।"

"मेरे लिए उन लोगों का अस्तित्व कभी था ही नहीं," मिस पाल नफरत से मुंह बिचकाकर बोली, "मैं उनमें से किसीको अपने पैर के अंगूठे के बराबर भी नहीं समझती।"

उसकी आंखों से लग रहा था जैसे अब भी वह उन लोगों से प्रतिशोध लेना चाहती हो। मैंने सोचा कि बातचीत का यह विषय ही बदल दिया जाए तो अच्छा है।

"तुम्हें पता है कि रमेश का फिर लखनऊ ट्रांसफर हो गया है ?" मैंने पूछा।

"अच्छा ?"

मिस पाल ने उस सम्बन्ध में और कुछ भी जानने की उत्सुकता प्रकट नहीं की। फिर भी मैं उसे रमेश के ट्रांसफर का किस्सा विस्तार से सुनाने लगा। मिस पाल 'हूं-हां' करती रही, मगर यह साफ लग रहा था कि वह उस समय अपने ही अन्दर कहीं खोई हुई है।

मैं रमेश का किस्सा सुना चुका तो कुछ क्षण हम दोनों ही चुप रहे। फिर मिस पाल बोली, "देखो, मैं तुमसे सच कहती हूं रणजीत, मुझे वहां उन लोगों के बीच एक-एक पल काटना असम्भव लगा करता था। मुझे तो वहां लगता था जैसे मैं नरक में रहती हूं। तुम्हें पता ही है कि मैं दफ्तर में किसीसे बात करना भी पसन्द नहीं करती थी।"

मैं सुबह मनाली से बिना नाश्ता किए ही चला था, इसलिए मुझे भूख लग आई थी। मैंने बात को रोटी के प्रकरण पर ही ले आना उचित समझा।

मैंने उससे पूछा कि उसने अपने खाने की क्या व्यवस्था कर रखी है—क्या खुद बनाती है, या कोई नौकर रख छोड़ा है।

"अरे, तुम्हें भूख तो नहीं लगी?" मिस पाल अब दफ्तर के माहौल से बाहर निकल आई! "अगर भूख लगी हो तो उधर मेरे साथ रसोईघर में चलो। इस समय तो तुम्हें जो कुछ बना है, उसीमें से थोड़ा-बहुत खा लेना पड़ेगा। अलबत्ता शाम को मैं तुम्हें ठीक से बनाकर खिलाऊंगी। मुझे तुम्हारे आने का पता होता तो मैं इस समय भी कुछ और बना रखती। यहां बाज़ार में कुछ मिलता ही नहीं। किसी दिन अच्छी सब्ज़ी मिल जाए तो समझो कि बड़े भाग्य का दिन है। कोई ही दिन होता है जिस दिन एकाध अण्डा मिल जाता है।...शाम को मैं तुम्हारे लिए ट्राउट मछली बनाऊंगी। यहां की ट्राउट बहुत अच्छी होती है, मगर मिलती बहुत मुश्किल से है।"

मुझे खुशी हुई कि मैंने सफलतापूर्वक बात का विषय बदल दिया है। मिस पाल बिस्तर से उठकर खड़ी हो गई थी। मैंने भी कुरसी से उठते हुए कहा, "आओ, चलकर तुम्हारा रसोईघर तो देख लूं। इस समय मुझे कसकर भूख लगी है, इसलिए जो कुछ भी बना है वह मुझे ट्राउट से अच्छा लगेगा। शाम को मैं जोगिन्दरनगर पहुंच जाऊंगा।"

मिस पाल दरवाज़े से बाहर निकलती हुई सहसा रुक गई।

"तुम्हें शाम को जोगिन्दरनगर ही पहुंचना है तो लौटकर क्यों आए थे? यह बात तुम गांठ में बांध लो कि आज मैं तुम्हें यहां से नहीं जाने दूंगी। तुम्हें पता है इन तीन महीनों में तुम मेरे यहां पहले ही मेहमान आए हो? मैं तुम्हें आज कैसे जाने दे सकती हूं?...तुम्हारे साथ कुछ सामान-आमान भी है या ऐसे ही चले आए थे?"

मैंने उसे बताया कि मैं अपना सामान हिमाचल राज्य परिवहन के दफ्तर में छोड़ आया हूं और उनसे कह आया हूं कि दो घण्टे में मैं लौट आऊंगा।

"मैं अभी पोस्टमास्टर से वहां टेलीफोन करा दूंगी। कल तक तुम्हारा

सामान वहां हिफाज़त से रखा रहेगा। कल सुबह की बस से जाकर हम सामान यहां ले आएंगे। तुम कम से कम एक सप्ताह रहोगे। समझे? मुझे पता होता कि तुम मनाली में आए हुए हो तो मैं भी कुछ दिन के लिए वहां चली आती। आजकल तो मैं यहां ··खैर···तुम पहले उधर तो आओ, नहीं भूख के मारे ही यहां से भाग जाओगे।"

मैं इस नई स्थिति के लिए तैयार नहीं था। उस सम्बन्ध में बाद में बात करने की सोचकर मैं उसके साथ रसोईघर में चला गया। रसोई-घर में कमरे जितनी अराजकता नहीं थी, शायद इसलिए कि वहां सामान ही बहुत कम था। एक कपड़े की आराम-कुरसी थी, जो लगभग खाली ही थी—उसपर सिर्फ नमक का एक डिब्बा रखा हुआ था। शायद मिस पाल उसपर बैठकर खाना बनाती थी। खाना बनाने का और सारा सामान एक टूटी हुई मेज़ पर रखा था। कुरसी पर रखा हुआ डिब्बा उसने जल्दी से उठाकर मेज़ पर रख दिया और इस तरह मेरे बैठने के लिए जगह कर दी।

फिर मिस पाल ने जल्दी-जल्दी स्टोव जलाया और सब्ज़ी की पतीली उसपर रख दी। कलछी साफ नहीं थी, वह उसे साफ करने के लिए बाहर चली गई। लौटकर उसे कलछी को पोंछने के लिए कोई कपड़ा नहीं मिला। उसने अपनी कमीज़ से ही उसे पोंछ लिया और सब्ज़ी को हिलाने लगी।

"दो आदमियों का खाना है भी या दोनों को ही भूखे रहना पड़ेगा?" मैंने पूछा।

"खाना बहुत है," मिस पाल झुककर पतीली में देखती हुई बोली।

"क्या-क्या है?"

मिस पाल कलछी से पतीली में टटोलकर देखने लगी।

"बहुत कुछ है। आलू भी हैं, बैंगन भी हैं और शायद···शायद बीच में एकाध टींडा भी है। यह सब्ज़ी मैंने परसों बनाई थी।"

"परसों?" मैं ऐसे चौंक गया जैसे मेरा माथा सहसा किसी चीज़ से टकरा गया हो। मिस पाल कलछी चलाती रही।

"हर रोज़ तो नहीं बना पाती हूं," वह बोली, "रोज़ बनाने लगूं तो बस खाना बनाने की ही हो रहूं। और अम्···अ···अपने अकेली के लिए रोज़ बनाने का उत्साह भी तो नहीं होता। कई बार तो मैं सप्ताह-भर का खाना एकसाथ बना लेती हूं और फिर निश्चिन्त होकर खाती रहती हूं। कहो तो तुम्हारे लिए मैं अभी ताजा बना दूं।"

"तो चपातियां भी क्या परसों की ही बनी रखी हैं ?" मैं अनायास कुरसी से उठ खड़ा हुआ।

"आओ, इधर आकर देख लो, खा सकोगे या नहीं।" वह कोने में रखे हुए बेंत के सन्दूक के पास चली गई। मैं भी उसके पास पहुंच गया। मिस पाल ने सन्दूक का ढकना उठा दिया। सन्दूक में पच्चीस-तीस खुश्क चपातियां पड़ी थीं। सूखकर उन सबने कई तरह की आकृतियां धारण कर ली थीं। मैं सन्दूक के पास से आकर फिर कुरसी पर बैठ गया।

"तुम्हारे लिए ताज़ा चपातियां बना देती हूं," मिस पाल एक अपराधी की तरह देखती हुई बोली।

"नहीं, नहीं, जो कुछ बना रखा है वही खाएंगे," मैंने कहा। मगर अपनी इस भलमनसाहत के लिए मेरा मन अन्दर ही अन्दर कुढ़ गया।

मिस पाल सन्दूक का ढक्कन बन्द करके स्टोव के पास लौट गई।

सब्ज़ी तीन दिन से ज़्यादा नहीं चलती," वह बोली, "बाद में मैं जैम, प्याज़ और नमक से काम चलाती हूं। यहां अलूचे बहुत मिल जाते हैं, इसलिए मैंने बहुत-सा अलूचे का जैम बना रखा है। खाकर देखो, अच्छा जैम है।···ठहरो, तुम्हें प्लेट देती हूं।"

वह फिर जल्दी से बाहर चली गई और कमरे से कीलोंवाली प्लेट खाली करके ले आई।

"गिलास में अम्···अ···," वह आकर बोली, "सरसों का तेल रखा है। पानी तुम प्याली में ही ले लोगे या···?"

ट्राउट मछली···खाना खाते समय और खाना खा चुकने के बाद भी मिस पाल के दिमाग पर ट्राउट मछली की बात ही सवार रही। जैसे भी हो,

शाम को वह ट्राउट मछली बनाएगी। उसके हठ की वजह से मैंने उससे कह दिया था कि मैं अगले दिन सुबह तक वहां रह जाऊंगा। मिस पाल ने आगे का फैसला अगले दिन पर छोड़ दिया था। उसे शाम के लिए कई और चीज़ों का इन्तज़ाम करना था, क्योंकि ट्राउट मछली आसानी से तो नहीं बन जाती पहली चीज़ घी चाहिए था। डिब्बे में घी नाम-मात्र को ही था। प्याज़ और मसाला भी घर में नहीं था। मिट्टी का तेल भी चाहिए था। खाने के बाद हम लोग घूमने के लिए निकले तो पहले वह मुझे साथ बाज़ार में ले गई। हटवार के पास भी घी नहीं था। उसके लिए मिस पाल ने पोस्टमास्टर से अनुरोध किया कि वह अपने घर से उसे शाम के लिए आधा सेर घी भिजवा दे, अगले दिन कुल्लू से लाकर लौटा देगी। उससे उसने यह भी कहा कि वह अपने घर के थोड़े-से फ्रेंच बीन भी उतरवाकर उसे भेज दे, और कोई मछली-वाला उधर से गुज़रे तो उसके लिए सेर-भर ट्राउट ले रखे।

"सब्बरवाल साहब, मैं आपको बहुत तकलीफ देती हूं," वह चलने से पहले सात-आठ बार उसे धन्यवाद देकर बोली, "मगर देखिए, मेरे मेहमान आए हुए हैं, और यहां ट्राउट के अलावा कोई अच्छी चीज़ मिलती नहीं। देखती हूं, अगर बाली मुझे मिल जाए तो मैं उससे कहूंगी कि वह मुझे दरिया से एक मछली पकड़ दे। मगर बाली का कोई भरोसा नहीं। आप ज़रूर मेरे लिए ले रखिएगा। मैंने मिसेज़ एटकिन्सन को भी कहला दिया है। उन्होंने भी ले ली तो मैं आज और कल दोनों दिन बना लूंगी। ध्यान रखिएगा। कई बार मछलीवाला आवाज़ नहीं लगाता और ऐसे ही निकल जाता है। थैंक यू, थैंक यू वैरी मच !"

मेरे सामान के लिए उसने कुल्लू फोन भी करा दिया। अब सड़क पर चलती हुई वह सुबह के नाश्ते की बात करने लगी।

"रात को तो ट्राउट हो जाएगी, मगर सुबह नाश्ता क्या बनाया जाए? डबल रोटी यहां नहीं मिलेगी, नहीं तो मैं तुम्हें शहद के टोस्ट ही बनाकर खिलाती। अच्छा, खैर, देखो...।"

सड़क पर खुली धूप फैली थी और भेड़ों और पशम के बकरों का रेवड़

हमारे आगे-आगे चल रहा था। साथ दो कुत्ते जीभ लपलपाते हुए पहरेदारी करते जा रहे थे। सामने से एक जीप के आ जाने से रेवड़ में खलबली मच गई। बकरवाल भेड़ों को पहाड़ की तरफ धकेलने लगे। एक भेड़ का बच्चा ढलान से फिसल गया और नीचे से सिर उठाकर मिमियाने लगा। किसी बकरवाल का ध्यान उसकी तरफ नहीं गया तो मिस पाल सहसा परेशान हो उठी, "ए भाई, देखो वह बच्चा नीचे जा गिरा है।···बकरीवाले, एक बच्चा नीचे खाई में गिर गया है, उसे उठा लाओ। ए भाई।"

एक दिन पहले वर्षा हुई थी, इसलिए ब्यास खूब चढ़ा हुआ था। नुकीली चट्टानों से छिलता और कटता हुआ पानी शोर करता हुआ बह रहा था। सामने दरिया पार करने का झूला था। झूले की चर्खियां घूम रही थीं। रस्सियां इकट्ठी हो रही थीं और झूला दो व्यक्तियों को लिए हुए इस पार से उस पार जा रहा था। सहसा झूले में बैठे हुए दोनों व्यक्ति 'ही-ही-ही-ही' करके हंसने लगे, जैसे किसीको चिढ़ा रहे हों। फिर उनमें से एक ने ज़ोर से छींक दिया। झूला उस पार पहुंच गया और वे व्यक्ति उसी तरह हंसते और छींकते हुए उससे उतर गए। झूला छोड़ दिया गया और उसकी रस्सियां इस सिरे से उस सिरे तक आधी गोलाइयों में फैल गईं। जो व्यक्ति उधर उतरे थे, वे उस किनारे से फिर एक बार ज़ोर से हंसे। तभी झूला खींचने-वालों में एक लड़का मचान से उतरकर हमारे पास आ गया। वह ऐसे बात करने लगा जैसे अभी-अभी कोई दुर्घटना होकर हटी हो।

"मिस साहब," उसने कहा, "वह वही सुदर्शन है, जिसने आपके कुत्ते को कुछ खिलाया था। यह अब भी शरारत करने से बाज़ नहीं आता।"

उन व्यक्तियों के हंसने और छींकने का मिस पाल पर उतना असर नहीं हुआ था जितना उस लड़के की बात का हुआ। उसका चेहरा एकदम से उतर गया और आवाज़ खुश्क हो गई।

"यह उधर के गांव का आदमी है न ?" उसने पूछा।

"हां, मिस साहब !"

"तुम पोस्टमास्टर को बताना। वे अपने-आप इसे ठीक कर लेंगे।"

"मिस साहब, यह हमसे कहता है कि यह मिस साहब···!"

"तुम इस वक्त जाओ अपना काम करो," मिस पाल उसे झिड़ककर बोली, "पोस्टमास्टर से कहना, वे इसे एक दिन में ठीक कर देंगे।"

"मगर मिस साहब···!"

"जाओ, फिर कभी उधर आकर बात करना।"

लड़के की समझ में नहीं आया कि मिस साहब से बात करने में उस समय उससे क्या अपराध हुआ है। वह सिर लटकाए हुए चुपचाप वहां से लौट गया।

कुछ देर हम लोग वहीं रुके रहे। मिस पाल जैसे थकी हुई-सी सड़क के किनारे एक बड़े-से पत्थर पर बैठ गई। मैं दरिया के उस पार पहाड़ की चोटी पर उगे हुए वृक्षों की लम्बी पंक्ति को देखने लगा, जो नीले आकाश और गुब्बारे जैसे सफेद बादलों के बीच खिंची हुई लकीर-सी लगती थी। दरिया के दोनों तरफ पुल के सलेटी खम्भे खड़े थे, जिनपर अभी पुल नहीं बना था। खम्भों के आसपास से झड़कर थोड़ी-थोड़ी मिट्टी दरिया में गिर रही थी। मैंने उधर से आंखें हटाकर मिस पाल की तरफ देखा। मिस पाल मेरी तरफ देख रही थी। शायद वह जानना चाहती थी कि झूलेवाले लड़के की बात का मेरे मन पर क्या प्रभाव पड़ा है।

"तो आगे चलें?" मुझसे आंखें मिलते ही उसने पूछा।

"हां चलो।"

मिस पाल उठ खड़ी हुई। उसकी सांस कुछ-कुछ फूल रही थी। वह चलती हुई मुझे बताने लगी कि वहां के लोगों में कितनी तरह के अन्ध-विश्वास हैं। जब पिकी बीमार हुआ तो वहां के लोगों ने सोचा था कि किसीने उसे कुछ खिला-विला दिया है।

"ये अनपढ़ लोग हैं। मैंने इनकी बातों का विरोध भी नहीं किया। ये लोग अपने अंधविश्वास एक-दिन में थोड़े ही छोड़ सकते हैं! इस चीज़ में जाने अभी कितने बरस लगेंगे!"

और रास्ते में चलते हुए वह बार-बार मेरी तरफ देखती रही कि मुझे

उसकी बात पर विश्वास हुआ है या नहीं। मैंने सड़क से एक छोटा-सा पत्थर उठा लिया था और चुपचाप उसे उछालने लगा था। काफी देर तक हम लोग खामोश चलते रहे। वह खामोशी मुझे अस्वाभाविक लगने लगी तो मैंने मिस पाल से वापस घर चलने का प्रस्ताव किया।

"चलो, चलकर तुम्हारी बनाई हुई नई तसवीरें ही देखी जाएं," मैंने कहा, "इन तीन-चार महीनों में तो तुमने काफी काम कर लिया होगा।"

"पहले घर चलकर एक-एक प्याली चाय पीते हैं," मिस पाल बोली, "सचमुच इस समय मैं चाय की एक गरम प्याली के लिए जिन्दगी की कोई भी चीज कुर्बान कर सकती हूं। मेरा तो मन था कि घर से चलने से पहले ही एक-एक प्याली पी लेते, मगर फिर मैंने कहा कि पोस्टमास्टर से कहने में देर हो जाएगी तो मछलीवाला निकल जाएगा।"

इस बात ने मेरे मन को थोड़ा गुदगुदा दिया कि तीन महीने में आया हुआ पहला मेहमान उस समय मिस पाल के लिए अपनी तसवीरों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।

लौटकर कॉटेज में पहुंचते ही मिस पाल चाय बनाने में व्यस्त हो गई। वह आते हुए काफी थक गई थी, क्योंकि ज़रा-सी चढ़ाई चढ़ने में ही उसकी सांस फूलने लगती थी। मगर वह ज़रा देर भी सुस्ताने के लिए नहीं रुकी। चाय के लिए उसकी यह व्यस्तता मुझे बहुत अस्वाभाविक लगी, शायद इसलिए कि मुझे खुद चाय की ज़रूरत महसूस नहीं हो रही थी। मिस पाल इस तरह चम्मचों और प्यालियों को ढूंढ़ने के लिए परेशान हो रही थी, जैसे उसके दस मेहमान चाय का इन्तज़ार कर रहे हों और उसे समझ न आ रहा हो कि कैसे जल्दी से सारा इन्तज़ाम करे।

मैं घूमकर कमरे में और बरामदे में लगी हुई तसवीरों को देखने लगा। जिस-जिस तसवीर पर भी मेरी नज़र पड़ी, मुझे लगा वह मेरी पहले की देखी हुई है। कुछ बड़ी तसवीरें थीं जो मिस पाल पंजाब के एक मेले से बनाकर लाई थी। वही अजीब-अजीब-से चेहरे थे, जिनपर हम लोग एक बार फब्तियां कसते रहे थे। जाने क्यों मिस पाल अपने चित्रों के लिए सदा

ऐसे ही चेहरे चुनती थी जो किसी न किसी रूप में विकृत हो ! मैंने सारा कमरा और बरामदा घूम लिया। दो-एक अधूरी तसवीरों को छोड़कर मुझे एक भी नई चीज़ दिखाई नहीं दी। मैंने रसोईघर में जाकर मिस पाल से पूछा कि उसकी नई तस्वीरें कहां हैं।

"अजी छोड़ो भी," मिस पाल प्यालियां धोती हुई बोली, "चाय की प्याली पीकर हम लोग ऊपर की तरफ घूमने चलते हैं। ऊपर एक बहुत पुराना मन्दिर है। वहां का पुजारी तुम्हें ऐसे-ऐसे किस्से सुनाएगा कि तुम सुनकर हैरान रह जाओगे। एक दिन वह बता रहा था कि यहां कुछ मन्दिर ऐसे हैं, जहां लोग पहले तो देवता से वर्षा के लिए प्रार्थना करते हैं, मगर बाद में अगर देवता वर्षा नहीं देता तो उसे हिडम्बा के मन्दिर में ले जाकर रस्सी से लटका देते हैं। है नहीं मज़ेदार बात ? जो देवता तुम्हारा काम न करे, उसे फांसी लगा दो। मैं कहती हूं रणजीत, यहां लोगों में इतने अन्ध-विश्वास हैं, इतने अन्धविश्वास हैं कि क्या कहा जाए। ये लोग अभी तक जैसे कौरवों-पांडवों के ज़माने में ही जीते हैं, आज के ज़माने से इनका कोई सम्बन्ध ही नहीं है।"

और एक बार उड़ती नज़र से मुझे देखकर वह चीनी ढूंढ़ने में व्यस्त हो गई। "अरे चीनी कहां चली गई ? अभी हाथ में थी, और अभी न जाने कहां रख दी ? देखो कैसी भुलक्कड़ हो गई हूं ! मेरा तो बस एक ही इलाज है कि कोई हाथ में छड़ी लेकर मुझे ठीक करे। यह भी कोई रहने का ढंग है जैसे मैं रहती हूं ?"

"तुमने यहां के कुछ लैंडस्केप नहीं बनाए ?" मैंने पूछा।

"तसवीरें तो बहुत-सी शुरू कर रखी हैं, पर अभी तक पूरी नहीं कर सकी," मिस पाल जैसे उस मुश्किल स्थिति से बचने का प्रयत्न करती हुई बोली, "अब किसी दिन लगकर सबकी सब तसवीरें पूरी करूंगी। तार-पीन का तेल भी खत्म हो चुका है, किसी दिन जाकर लाना है। कई दिनों से सोच रही थी कि मण्डी जाकर कैनवस और रंग भी ले आऊं, पर यूं ही आलस कर जाती हूं। कुछ ड्राइंग पेपर भी जिल्द कराने हैं। अब जाऊंगी

किसी दिन और सारे काम एक साथ ही कर आऊंगी।"

बात करते हुए मिस पाल की आंखें झुकी जा रही थीं, जैसे वह अपने ही सामने किसी चीज़ के लिए अपराधी हो, और लगातार बात करके अपने अपराध के अनुभव को छिपाना चाहती हो। मैं चुप रहकर उसे चाय में चीनी मिलाते देखता रहा। उसे देखते हुए उस समय मेरे मन में कुछ वैसी उदासी भरने लगी जैसी एक निर्जन समुद्र-तट पर या ऊंची पहाड़ियों से घिरी हुई किसी एकांत पथरीली घाटी में जाकर अनायास मन में भर जाती है।

"कल से एक तो मैं अपने घर को ठीक करूंगी," मिस पाल क्षण-भर बाद फिर उसी तरह बिना रुके बात करने लगी, "एक तो घर का सारा सामान ठीक ढंग से लगाना है। तुम्हें पता है, मैंने कितने चाव से दिल्ली में अपने कमरे के लिए जाली के पर्दे बनवाए थे? वे पर्दे यहां ज्यों के त्यों बक्स में बन्द पड़े हैं; मेरा लगाने को मन ही नहीं हुआ। मैं कल ही तरखान से कहकर पर्दों के लिए चौखटें बनवाऊंगी। खाने-पीने का थोड़ा-बहुत सामान भी घर में रखना ही चाहिए; बिस्कुट, मक्खन, डबल रोटी और अचार का होना तो बहुत ही ज़रूरी है। जो चीज़ें कुल्लू से मिल जाती हैं वे तो मैं लाकर रख ही सकती हूं···तारपीन का तेल भी मुझे कुल्लू से ही मिल जाएगा।"

उसने चाय की प्याली मेरे हाथ में दे दी तो भी मेरे मुंह से कोई बात नहीं निकली, और मैं चुपचाप छोटे-छोटे घूंट भरने लगा। मेरे मन को उस समय एक तरह की जड़ता ने घेर लिया था। कहां मिस पाल के बारे में दिल्ली के लोगों से सुनी हुई वे सब बातें और कहां उसके जीवन की यह एकान्त विडम्बना!

ट्राउट मछली! मिस पाल की सारी परेशानी के बावजूद उस दिन उसे ट्राउट नहीं मिल सकी। पोस्टमास्टर ने बताया कि मछलीवाला उस दिन आया ही नहीं। मिस पाल के बहुत-बहुत खुशामद करने पर भी मकान-मालकिन का चौकीदार बाली दरिया से मछली पकड़ने के लिए राज़ी नहीं हुआ। उसने कहा कि वह अपनी छड़ी पालिश कर रहा है, उसे फ़ुरसत नहीं है। मिसेज़ एटकिन्सन के बच्चों ने एक मछली पकड़ी थी। मगर उसके पति

ने उस दिन खास तौर पर मछली की कतलियों के लिए कहा था, इसलिए वह अपनी मछली मिस पाल को नहीं दे सकती थी। हां, पोस्टमास्टर ने फ्रेंच बीन ज़रूर भेज दिए। चावल और सूखे फ्रेंच बीन ! रात की रोटी के लिए मिस पाल का सारा उत्साह ठण्डा पड़ गया। खाना बनाने में उसका मन भी नहीं लगा, जिससे चावल थोड़ा नाचे लग गए। खाना खाते समय मिस पाल बस अफ़सोस ही प्रकट करती रही।

"मैं बहुत बदकिस्मत हूं रणजीत, हर लिहाज से मैं बहुत ही बदकिस्मत हूं," खाना खाने के बाद हम लोग बाहर मैदान में कुरसियां निकालकर बैठ गए तो उसने कहा। वह सिर के पीछे हाथ रखे आकाश की ओर देख रही थी। बारहीं या तेरहीं की रात होने से आकाश में तीन तरफ खुली चांदनी फैली थीं। ब्यास की आवाज़ वातावरण में एक गूंज पैदा कर रही थी। वृक्षों की सरसराहट के अतिरिक्त मैदान की घास से भी एक धीमी-सी सर-सराहट निकलती प्रतीत होती थी। हवा तेज़ थी और सामने पहाड़ के पीछे से उठता हुआ बादल धीरे-धीरे चांद की तरफ सरक रहा था।

"क्या बात है मिस पाल, तुम इस तरह गुम-सुम क्यों हो रही हो ?" मैंने कहा, "चावल थोड़े खराब हो गए, तो इसमें इस तरह उदास होने की क्या बात है !"

मिस पाल सामने पहाड़ की धुंधली रेखा को देखती रही, जैसे उसमें कोई चीज़ खोज रही हो।

"मैं सोचती हूं रणजीत, कि मेरे जीने का कोई भी अर्थ नहीं है," उसने कहा।

और वह मुझे अपने आरम्भिक जीवन की कहानी सुनाने लगी। उसे बहुत बड़ी शिकायत थी कि आरम्भ में अपने घर में भी उसे ज़रा सुख नहीं मिला, यहां तक कि अपने माता-पिता का स्नेह भी उसे नहीं मिला। उसकी मां ने—उसकी अपनी मां ने—भी उसे प्यार नहीं किया। इसी वजह से पन्द्रह साल पहले वह अपना घर छोड़कर नौकरी करने के लिए निकल आई थी।

"सोचो, मां को मेरा घर में होना ही बुरा लगता था। पिताजी को मेरे

संगीत सीखने से चिढ़ थी। वे कहा करते थे कि मेरा घर घर है, रंडीखाना नहीं। भाइयों का जो थोड़ा-बहुत प्यार था, वह भी भाभियों के आने के बाद छिन गया। मैंने आज तक कितनी-कितनी मुश्किल से अपनी अम्... अ... पवित्रता को बचाया है, यह मैं ही जानती हूं। तुम सोच सकते हो कि एक अकेली लड़की के लिए यह कितना मुश्किल होता है। मेरा लाहौर की तरफ घूमने जाने को मन था; वहां की कुछ तसवीरें बनाना चाहती थी, मगर मैं वहां नहीं गई, क्योंकि मैं सोचती थी कि मर्द की पशु-शक्ति के सामने अम् ...अ...मैं अकेली क्या कर सकूंगी। फिर, तुम्हें पता है कि डिपार्टमेंट के लोग वहां मेरे बारे में कैसी बुरी-बुरी बात किया करते थे। इसीलिए मैं कहती हूं कि मुझे वहां के एक-एक आदमी से नफरत है। वे तुम्हारे बुखारिया और मिर्ज़ा और जोरावरसिंह। मैं तो कभी ऐसे लोगों के साथ बैठकर एक प्याली चाय भी पीना पसन्द नहीं करती थी। तुम्हें याद है, एक बार जब जोरावरसिंह ने मुझसे कहा था...।"

और फिर वह दफ्तर के जीवन की कई छोटी-छोटी घटनाएं दोहराने लगी। जब मैंने देखा कि वह फिर से उसी वातावरण में जाकर खामखाह अपना गुस्सा भड़का रही है तो मैंने उससे फिर कहा कि अब वह दफ्तर के लोगों के बारे में न सोचे, अपने संगीत और अपने चित्रों की बात ही सोचे।

"तुम यहां रहकर कुछ अच्छी-अच्छी चीज़ें बना लो, फिर दिल्ली आ कर अपनी प्रदर्शनी करना," मैंने कहा, "जब लोग तुम्हारी चीज़ें देखेंगे और तुम्हारा नाम सुनेंगे तो अपने-आप तुम्हारी कद्र करेंगे।"

"न, मैं प्रदर्शनी-अदर्शनी के किसी चक्कर में नहीं पड़ूंगी" मिस पाल उसी तरह सामने की तरफ देखती हुई बोली, "तुम जानते ही हो इन सब चीज़ों में कितनी पॉलिटिक्स चलती है। मैं उस पॉलिटिक्स में नहीं पड़ना चाहती। मेरे पास अभी तीन-चार हज़ार रुपये हैं, जिनसे मेरा काफी दिन गुज़ारा चल जाएगा। जब ये रुपये चुक जाएंगे, तो..." और वह जैसे कुछ सोचती हुई चुप कर गई।

मैं आगे की बात सुनने के लिए बहुत उत्सुक था। मगर मिस पाल कुछ

देर बाद कंधे हिलाकर बोली, "...तो भी कुछ न कुछ हो ही जाएगा। अभी वह वक्त आए तो सही।"

बादल ऊंचा उठ रहा था और वातावरण में ठंडक बढ़ती जा रही थी। जंगल की तरफ से आती हुई हवा की गूंज शरीर में बार-बार सिहरन भर देती थी। साथ के कॉटेज में रेडियो पर पश्चिमी संगीत चल रहा था। उससे आगे के कॉटेज में लोग खिलखिलाकर हंस रहे थे। मिस पाल अपनी आंखें मूंदे हुए मुझे बताने लगी कि होशियारपुर में उसने भृगुसंहिता से अपनी कुण्डली निकलवाई थी। उस कुण्डली के फल के अनुसार इस जन्म में उसपर यह शाप है कि उसे कोई सुख नहीं मिल सकता—न धन का, न ख्याति का, न प्यार का। इसका कारण भी भृगुसंहिता में दिया हुआ था। अपने पिछले जन्म में वह सुन्दर लड़की थी और नृत्य, संगीत आदि कलाओं में बहुत पटु थी। उसके पिता बहुत धनी थे और वह उनकी अकेली संतान थी। जिस व्यक्ति से उसका ब्याह हुआ वह बहुत सुन्दर और धनी था। "मगर मुझे अपनी सुन्दरता और अपनी कला का बहुत मान था, इसलिए मैंने अपने पति का आदर नहीं किया ; कुछ ही दिनों में वह बेचारा दुःखी होकर इस संसार से चल बसा। इसीलिए मुझपर अब यह शाप है कि इस जन्म में मुझे सुख नहीं मिल सकता।"

मैं चुप रहकर उसे देखता रहा। अभी दिन में ही वह वहां के लोगों के अंधविश्वासों की चर्चा करती हुई उनका मज़ाक उड़ा रही थी। सहसा मिस पाल भी बोलते-बोलते चुप कर गई और उसकी आंखें मेरे चेहरे पर स्थिर हो गईं। उसके लिपस्टिक से रंगे हुए होंठों की तह में जैसे उस समय कोई चीज़ कांप रही थी। काफी देर हम लोग चुप बैठे रहे। बादल ने चाँद को छा लिया था और चारों तरफ गहरा अंधेरा हो रहा था। सहसा साथ के कॉटेज की बत्ती भी बुझ गई, जिससे अंधेरा और भी स्याह और और भी गहरा लगने लगा।

मिस पाल उसी तरह मेरी तरफ देख रही थी। मुझे महसूस होने लगा कि मेरे आसपास की हवा कुछ भारी हो रही है। मैं सहसा कुरसी पीछे

सरकाकर उठ खड़ा हुआ।

"मेरा खयाल है, अब रात काफी हो गई है," मैंने कहा, "इसलिए अब चलकर सो रहा जाए। और बातें अब सुबह होंगी।"

"हां, हां" मिस पाल भी अपनी कुरसी से उठती हुई बोली, "मैं अभी चलकर बिस्तर बिछा देती हूं। तुम बताओ, तुम्हारा बिस्तर बरामदे में बिछा दूं या…"

"हां बरामदे में ही बिछा दो। अन्दर काफी गरमी होगी।"

"देख लो, रात को ठंड हो जाएगी।"

"कोई बात नहीं, बरामदे में हवा आती रहेगी तो अच्छा लगेगा।"

और बरामदे में लेटे हुए मैं देर तक जाली के बाहर देखता रहा। बादल पूरे आकाश में छा गया था और दरिया का शब्द बहुत पास आया-सा लगता था। जाली से लगा हुआ मकड़ी का जाला हवा से हिल रहा था। पास ही कोई चूहा कोई चीज़ कुतर रहा था। अन्दर कमरे से बार-बार करवट बदलने की आवाज़ सुनाई दे जाती थी।

"रणजीत!" अन्दर से आवाज़ आई तो मेरे सारे शरीर में एक सिहरन भर आई।

"मिस पाल!"

"सरदी तो नहीं लग रही?"

"नहीं, बल्कि हवा है, इसलिए अच्छा लग रहा है।"

और तभी टप्-टप्-टप्-टप् मोटी-मोटी बूंदें पड़ने लगीं। पानी की बौछार मेरे बिस्तर पर आने लगी तो मैंने करवट बदल ली। बरामदे की बत्ती मैंने जलती रहने दी थी, इसलिए कई चीज़ इधर-उधर बिखरी नज़र आ रही थीं। बिस्तर बिछाते समय मिस पाल को घर की काफी उथल-पुथल करनी पड़ी थी। मेरी चारपाई के पास ही एक तिपाई औंधी पड़ी थी और उससे ज़रा आगे तसवीरों के कुछ एक फ्रेम रास्ते में गिरे थे। सामने के कोने में मिस पाल के ब्रश और कपड़े एक ढेर में उलझे हुए पड़े थे।

अन्दर की चारपाई चिरमिराई और लकड़ी के फर्श पर पैरों की धप्-

वप् आवाज़ सुनाई देने लगी। फिर सुराही से चुल्लू में पानी पीने की आवाज़ आने लगी।

"रणजीत !"

"मिस पाल !"

"प्यास तो नहीं लगी ?"

"नहीं।"

"अच्छा, सो जाओ।"

कुछ देर मुझे लगता रहा जैसे मेरे आसपास एक बहुत तेज सांस चल रही है जो धीरे-धीरे दबे पैरों सारे वातावरण पर अधिकार करती जा रही है, और आसपास की हर चीज़ अपने पर उसका दबाव महसूस कर रही है। पानी की बौछार कुछ धीमी पड़ने लगी तो मैंने फिर से जाली की तरफ करवट बदल ली और पहले की तरह ही बाहर देखने लगा। तभी पास ही भन्न से किसी चीज़ के गिरने की आवाज़ सुनाई दी।

"क्या गिरा है रणजीत ?" अन्दर से आवाज़ आई।

"पता नहीं, शायद किसी चूहे ने कुछ गिरा दिया है।"

"सचमुच मैं यहां चूहों से बहुत तंग आ गई हूं।"

"मैं चुप रहा। अन्दर की चारपाई फिर चिरमिराई।

"अच्छा, सो जाओ !"

सारी रात पानी पड़ता रहा। सुबह-सुबह वर्षा थम गई, मगर आकाश साफ नहीं हुआ। सुबह उठकर चाय के समय तक मेरी मिस पाल से खास बात नहीं हुई। चाय पीते समय भी मिस पाल अधूरे-अधूरे टुकड़ों में ही बात करती रही। मैंने उससे कहा कि मैं अब पहली बस से चला जाऊंगा तो उसने एक बार भी मुझसे रुकने के लिए आग्रह नहीं किया। यूं साधारण बातचीत में भी मिस पाल काफी तकल्लुफ बरत रही थी जैसे किसी बिल-कुल अपरिचित व्यक्ति से बात कर रही हो। मुझे उसका सारा व्यवहार बहुत अस्वाभाविक लग रहा था। वह जैसे बात न करने के लिए ही अपने

को छोटे-छोटे कामों में व्यस्त रख रही थी। मैंने दो-एक बार उससे हल्के-से मज़ाक करने का भी प्रयत्न किया जिससे तनाव हट जाए और मैं उससे ठीक से विदा लेकर जा सकूं, मगर मिस पाल के चेहरे पर हल्की-सी मुस्कराहट भी नहीं आई।

"अच्छा तो मिस पाल, अब चलने की बात की जाए," आखिर मैंने कहा, "तुम कल कह रही थीं कि तुम भी कुल्लू तक साथ ही चलोगी। तो अच्छा होगा कि तुम आज ही वहां से अपना सारा सामान भी ले आओ। बाद में तुम फिर आलस कर जाओगी।"

"नहीं, मैं आलस नहीं करूंगी," मिस पाल बोली, "किसी दिन जाकर जो कुछ लाना है सब ले आऊंगी।"

और फिर बरामदे में बिखरे हुए कपड़ों को बिना मतलब ही उठाकर इधर से उधर रखते हुए उसने कहा, "आज बरसात का दिन है, इसलिए आज नहीं जाऊंगी। कल या परसों किसी समय देखूंगी। लाने के लिए कितनी ही चीज़ें हैं, इसलिए अच्छी तरह सब सोचकर जाना चाहिए। आज घिरा हुआ दिन है, इसलिए आज नहीं···।"

"घिरा हुआ दिन है तो क्या घर का सामान नहीं आएगा?" मैंने अपने आग्रह से उसे सुलझाने की चेष्टा करते हुए कहा, "तुम मुझे बताओ कि घी और तारपीन के डिब्बे कहां रखे हैं। कोई बड़ा थैला हो तो वह भी साथ में ले लो। फुटकर चीज़ें उसमें आ जाएंगी। यहां से जो भी बस मिलेगी, उसमें हम लोग साथ-साथ चले चलेंगे। मैं कुल्लू से बारह बजे की बस पकड़कर आगे चला जाऊंगा। तुम्हें तो उधर से लौटने के लिए सारा दिन बसें मिलती रहेंगी।"

मैं जान-बूझकर इस तरह बात कर रहा था जैसे मिस पाल का साथ चलना निश्चित ही हो, हालांकि मैं जानता था कि वह टालने का पूरा प्रयत्न करेगी। मिस पाल इधर से उधर जाती हुई ढूंढ़-ढूंढ़कर अपने करने के लिए काम निकाल रही थी। उसके चेहरे से लग रहा था जैसे मेरी बातें उसे बिलकुल व्यर्थ लग रही हों और वह जल्द-अज़-जल्द अपने एकांत में

लौट जाना चाहती हो।

"देखो, कभी-कभी यहां से बस में एक भी सीट नहीं मिलती," उसने कहा, "दो-दो सीटें मिलना तो बहुत ही मुश्किल है। तुम मेरी वजह से अपनी बारह बजे की बस क्यों मिस करते हो ? तुम चले जाओ, मैं कल या परसों जाकर जो कुछ भी मुझे लाना है ले आऊंगी।" और जैसे सहसा कोई काम याद आ जाने से वह जल्दी से अपना चेहरा दूसरी तरफ हटाए हुए कमरे में चली गई। कुछ देर में वह पेटीकोट लिए हुए कमरे से बाहर आई। पेटीकोट को टिड्डयां काट गई थीं। उसने जैसे नुकसान की परेशानी की वजह से ही चेहरा सख्त किए हुए उसे एक तरफ कोने में फेंक दिया और किसी तरह कठिनाई से बोली, "मैंने तुमसे कह दिया है कि तुम चले जाओ। तुम्हें पता है कि मुझे तो अकेली को ही दो सीटें चाहिएं।"

"ये सब बहाने तुम रहने दो," मैंने कहा, "एक बस में जगह नहीं मिलेगी तो दूसरी में मिल जाएगी। तुम इधर आकर मुझे बताओ कि वे डिब्बे कहां रखे हैं।"

मिस पाल शायद ज्यादा बात नहीं करना चाहती थी, इसलिए उसने मेरी बात का और विरोध नहीं किया।

"अच्छा, तुम बैठो, मैं अभी ढूंढ़ती हूं," उसने कहा और आंखें बचाती हुई रसोईघर में चली गई।

पहली बस में सचमुच हम लोगों को जगह नहीं मिली। ड्राइवर ने बस वहां रोकी ही नहीं, और हाथ के इशारे से कह दिया कि बस में जगह नहीं है। दूसरी बस में भी जगह नहीं थी, मगर किसी तरह कह-कहाकर हमने उसमें अपने लिए जगह बना ली। मगर हम कुल्लू काफी देर से पहुंचे, क्योंकि रात की बरसात से एक जगह सड़क टूट गई थी और उसकी मरम्मत की जा रही थी। हमारे कुल्लू पहुंचने के लगभग साथ ही बारह बजे की बस भी मनाली से आ पहुंची। पौने बारह हो चुके थे। मैंने अन्दर जाकर अपने सामान का पता किया, फिर बाहर मिस पाल के पास आ गया। मिस पाल ने खाली डिब्बे अपने दोनों हाथों में संभाल रखे थे। मैं डिब्बे उसके हाथों से

लेने लगा तो उसने अपने हाथ पीछे हटा लिए।

"चलो पहले बाज़ार में चलकर तुम्हारा सामान ख़रीद लें," मैंने कहा।

"अब सामान की बात रहने दो," उसने कहा, "तुम्हारी बस आ गई है, तुम इसमें चले जाओ। सामान तो मैं किसी भी समय खरीद लूंगी। तुम्हें इसके बाद फिर किसी बस में जगह नहीं मिलेगी। दो बजे की बस मनाली से ही भरी हुई आती है। तुम्हारा एक दिन और यहां खराब होगा।"

"दिन ख़राब होने की क्या बात है," मैंने कहा, "पहले चलकर बाज़ार से सामान खरीद लेते हैं। अगर आज सचमुच किसी बस में जगह नहीं मिली तो मैं तुम्हारे साथ लौट चलूंगा और कल किसी बस से चला जाऊंगा। मुझे वापस पहुंचने की ऐसी कोई जल्दी नहीं है।"

"नहीं तुम चले जाओ," मिस पाल हठ के साथ बोली, "अपने लिए खामखाह मैं तुम्हें क्यों परेशान करूं? अपना सामान तो मैं जब कभी भी ले लूंगी।"

"मगर मुझे लगता है कि आज तुम ये डिब्बे इसी तरह लिए हुए ही लौट जाओगी।"

"अरे नहीं," मिस पाल की आंखें उमड़ आईं और वह अपने आंसुओं को रोकने के लिए दूसरी तरफ देखने लगी। "तुम समझते हो मैं अपने शरीर की देखभाल ही नहीं करती। अगर न करती तो यह इतना शरीर ऐसे ही होता?...लाओ पैसे दो, मैं तुम्हारा टिकट ले आती हूं। देर करोगे तो इस बस में भी जगह नहीं मिलेगी।"

"तुम इस तरह ज़िद क्यों करती हो मिस पाल? मुझे जाने की सचमुच ऐसी कोई जल्दी नहीं है," मैंने कहा।

"मैंने तुमसे कहा है, तुम पैसे निकालो" मैं तुम्हारा टिकट ले आऊं मगर नहीं, तुम रहने दो। कल का तुम्हारा टिकट मेरी वजह से खराब हुआ था। मैं फिर पैसे तुमसे किसलिए मांग रही हूं?"

और वह डिब्बे वहीं रखकर झटपट टिकट-घर की तरफ बढ़ गई।

"ठहरो, मिस पाल," मैंने असमंजस में अपना बटुआ जेब से निकाल

लिया।

"तुम रुको, मैं अभी आ रही हूं। तुम उतनी देर में अपना सामान निकलवाकर ऊपर रखवाओ।

मेरा मन उस समय न जाने कैसा हो रहा था, फिर भी मैंने अन्दर से अपना सामान निकलवाया और बस की छत पर रखवा दिया। मिस पाल तब तक टिकटघर के बाहर ही खड़ी थी। शनिवार होने के कारण उस दिन स्कूल में जल्दी छुट्टी हो गई थी और बहुत-से बच्चे बस्ते लटकाए सुलतानपुर की पहाड़ी से नीचे आ रहे थे। कई बच्चे बस की सवारियों को देखने के लिए वहां आसपास जमा हो रहे थे। मिस पाल उस समय प्याज़ी रंग की सलवार-कमीज़ पहने थी और ऊपर काला दुपट्टा लिए थी। उन कपड़ों की वजह से उसका शरीर पीछे से और भी फैला हुआ लगता था। बच्चे एक-दूसरे से आगे होते हुए टिकटघर के नज़दीक जाने लगे। मिस पाल टिकटघर की खिड़की पर झुकी हुई थी। एक लड़के ने धीरे से आवाज़ लगाई, "कमाल है भई कमाल है!"

इसपर आसपास खड़े बहुत-से बच्चे हंस दिए। मुझे लगा जैसे किसीने मेरे भारी मन पर एक और बड़ा पत्थर डाल दिया हो। बच्चे सबके सब टिकटघर के आसपास जमा हो गए थे और आपस में खुसर-पुसर कर रहे थे। मैं उनसे कुछ कह भी नहीं सकता था, क्योंकि उससे मिस पाल का ध्यान खामखाह उनकी तरफ चला जाता। मैं उधर से अपना ध्यान हटाकर दरिया की तरफ से आते हुए लोगों को देखने लगा। फिर भी बच्चों की खुसर-पुसर मेरे कानों में पड़ती रही। दो लड़कियां बहुत धीरे-धीरे आपस में बात कर रही थीं, "मर्द है।"

"नहीं, औरत है।"

"तू सिर के बाल देख, बाकी शरीर देख। मर्द है।"

"तू कपड़े देख, और सब कुछ देख। औरत है।"

"आओ, बच्चो आओ, पास आकर देखो," मिस पाल की आवाज़ से मैं जैसे चौंक गया। मिस पाल टिकट लेकर खिड़की से हट आई थी। बच्चे

उसे आते देखकर 'आ गई, आ गई' कहते हुए भाग खड़े हुए थे। एक बच्चे ने सड़क के उस तरफ जाकर फिर ज़ोर से आवाज़ लगाई, "कमाल है भई कमाल है!"

मिस पाल सड़क पर आकर कई कदम बच्चों के पीछे चली गई।

"आओ बच्चो, यहां हमारे पास आओ," वह कहती रही। "हम तुम्हें मारेंगे नहीं, टॉफियां देंगे। आओ···"

मगर बच्चे पास आने की बजाय और भी दूर भाग गए। मिस पाल कुछ देर सड़क के बीच रुकी रही, फिर लौटकर मेरे पास आ गई। उस समय उसके चेहरे का भाव बहुत विचित्र लग रहा था। उसकी आँखों में आए हुए आंसू नीचे गिरने को हो रहे थे और वह उन्हें झुठलाने के लिए एक फीकी हंसी हंसने का प्रयत्न कर रही थी। उसने अपने ओंठों को जाने किस तरह काटा था कि एकाध जगह से उसकी लिपस्टिक नीचे फैल गई थी। उसकी घिसी हुई कमीज़ की सीवनें कंधे के पास से खुल रही थीं।

"खूबसूरत बच्चे थे; नहीं!" उसने आंखें झपकते हुए कहा।

मैंने उसकी बात का समर्थन करने के लिए सिर हिलाया तो मुझे लगा कि मेरा सिर पत्थर की तरह भारी हो गया है। उसके बाद मेरी समझ में कुछ नहीं आया कि मिस पाल मुझसे क्या कह रही है और मैं उससे क्या बात कर रहा हूं; जैसे आंखों और शब्दों के साथ विचारों का कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा था। मुझे इतना याद है कि मैंने मिस पाल को टिकट के पैसे देने का प्रयत्न किया, मगर वह पीछे हट गई और मेरे बहुत अनुरोध करने पर भी उसने पैसे नहीं लिए। मगर किस अवचेतन प्रक्रिया से हम लोगों के बीच अन्त तक बातचीत का सूत्र बना रहा, यह मैं नहीं जान सका। मेरे कान उसे बोलते सुन रहे थे और अपने को भी। परन्तु वे जैसे दूर की ध्वनियां थीं—अस्फुट, अस्पष्ट और अर्थहीन। जो बात मैं ठीक से सुन सका, वह यही थी, "और वहां जाकर रणजीत, दफ्तर में मेरे बारे में किसीसे बात मत करना। समझे? तुम्हें पता ही है कि वे लोग कितने ओछे हैं। बल्कि अच्छा होगा कि तुम किसीको यह भी न बताओ कि तुम मुझे यहां

मिले थे। मैं नहीं चाहती कि वहां कोई भी मेरे बारे में कुछ जाने या बात करे। समझे।"

बस तब स्टार्ट हो रही थी और मैं खिड़की से झांककर मिस पाल को देख रहा था। बस चली तो मिस पाल हाथ हिलाने लगी। दोनों खाली डिब्बे वह अपने हाथों में लिए हुए थी। मैंने भी एक बार उसकी तरफ हाथ हिलाया और बस के मुड़ने तक हिलते हुए खाली डिब्बों को ही देखता रहा!

○ ○ ○

ग्राशा है, यह कहानी-संग्रह ग्रापको रुचिकर लगा होगा। इसके बारे में हम ग्रापके बहुमूल्य विचारों का स्वागत करेंगे। राजपाल एण्ड सन्ज़ का सदैव यह प्रयास रहा है कि उत्कृष्ट प्रकाशनों से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया जाए; ग्रौर यह सब ग्रापके हार्दिक सहयोग पर ही निर्भर है। यदि ग्राप कथा-साहित्य पढ़ने में रुचि रखते हैं तो हमारा उत्कृष्ट कथा-साहित्य मंगवाकर पढ़िए ग्रथवा पुस्तकों का चुनाव करते समय हमें लिखिए। हम ग्रापकी हर संभव सहायता करने का प्रयास करेंगे।

राजेन्द्र यादव
के सम्पादन में

## एक नई, रोचक और महत्त्वपूर्ण पुस्तकमाला
## 'नये कहानीकार'

- सन् '५० के बाद हिन्दी कहानी का एक बिलकुल नया और ताज़ा रूप उभरकर आया है—विषय, शैली, भाषा और दृष्टि के क्षेत्र में एक से एक नये प्रयोग हुए हैं। इधर पांच-छः वर्षों से 'नयी' और 'पुरानी' कहानी को लेकर जैसे वाद-विवाद हो रहे हैं वैसे साहित्य के इतिहास में शायद ही कभी हुए हों। 'नयी' कहानी के इस आन्दोलन को कभी नयी और पुरानी पीढ़ी के द्वन्द्व का सवाल बनाकर पेश किया गया है, कभी नयी उम्र का व्यर्थ आवेश···
- लेकिन यह सभीने एक स्वर से माना है कि हिन्दी कहानी इस समय सबसे अधिक शक्तिशाली और जीवित साहित्य-विधा है; अपने युग के मानस की सच्ची और प्रभावशाली परछाईं है।
- और इसी दृष्टि से प्रमुख नये कहानीकारों की चुनी हुई प्रतिनिधि कहानियां, उनके मित्र लेखकों द्वारा व्यक्तिगत परिचय के साथ, एक जगह उपलब्ध कर सकने के लिए *'एक नयी पुस्तकमाला'* प्रस्तुत है—*'नये कहानीकार'*।
- पहली पांच पुस्तकें निम्नलिखित हैं :

मोहन राकेश
[परिचय : कमलेश्वर]

राजेन्द्र यादव
[परिचय : मोहन राकेश]

कमलेश्वर
[परिचय : राजेन्द्र यादव]

मन्नू भण्डारी
[परिचय : राजेन्द्र यादव]

फणीश्वरनाथ रेणु
[परिचय : कमलेश्वर]

*प्रत्येक का मूल्य : ३·००*

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

